आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-२० • अंक-४ • दिसम्बर-२०२५

भरतक्षेत्रके महासमर्थ आचार्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव

मार्गशीर्ष कृष्ण-८

ता. १२-१२-२०२५

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवका आचार्यपदारोहण दिन

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

• अज्ञानी जीव कर्मकृत बाह्य विकारमें भी निरंतर मैं हूँ—ऐसा मानता है। बराबर है—जिसने धतूरेके फलको खाया है वह क्या पत्थरको भी सुवर्ण नहीं मानता ? मानता ही है।१२८। (श्री पद्मनंदी आचार्य, पद्मनंदी पंचविंशति, निश्चय पंचाशत, श्लोक-३१)

• अहो ! आत्माका तो यह सहज अद्भुत वैभव है कि एक ओरसे देखने पर अनेकताको प्राप्त है और एक ओर देखने पर सदा एकताको धारण करता है, एक ओर देखने पर क्षणभंगुर है और एक ओर देखने पर सदा उसका उदय होनेसे ध्रुव है, एक ओर देखने पर परम विस्तृत है और एक ओर देखने पर अपने प्रदेशोंसे ही धारण कर रखा हुआ है।१२९। (श्री अमृतचंद्राचार्य, समयसार टीका, श्लोक-२७३)

• जो जीव पर्यायोंमें लीन है उनको पर समय कहनेमें आया है, जो जीव आत्मस्वभावमें स्थित हैं वे स्वसमय जानना।१३०।(श्री कुन्दकुन्दाचार्य, प्रवचनसार, गाथा-९४)

• स्वज्ञेय—आत्मा है और परज्ञेय—आत्माके सिवा जगतके सब पदार्थ हैं, जिसने यह स्वज्ञेय और परज्ञेयका पेंच समझ लिया उसने सब कुछ जान लिया, ऐसा समझो।१३१। (श्री बनारसीदासजी, नाटक समयसार, साध्यसाधक द्वार, पद-४७)

• परद्रव्यकी चिंतामें मग्न रहनेवाला आत्मा, परद्रव्य जैसा हो जाता है और शुद्ध आत्माके ध्यानमें मग्न आत्मा शीघ्र आत्मतत्त्वको—स्वयंके शुद्ध स्वरूपको प्राप्त कर लेता है।१३२। (श्री अमितगति आचार्य, योगसार प्राभृत, जीव अधिकार, गाथा-५१)

• शुद्धआत्माको जाना-अनुभवतः जीव शुद्धात्माको ही पाता है और अशुद्धात्माको जाना अनुभवतः जीव अशुद्धात्माको ही पाता है।१३३।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य, समयसार, गाथा-१८६)

• जीव शुद्ध निश्चयनयसे शुद्धात्माका ध्यान करता हुआ शुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त करता है तथा व्यवहारनयका अवलम्बन लेकरके अशुद्धात्माका विचार करता हुआ अशुद्ध ही आत्मस्वरूपको प्राप्त करता है। ठीक है—मनुष्य सोनेमेंसे सोनामय कुंडल और लोहैमेंसे लोहामय कुंडल ही उत्पन्न करता है।१३४।

(श्री पद्मनंदी आचार्य, पद्मनंदी पंचविंशति, निश्चय पंचाशत, श्लोक-१८)

वर्ष-20
अंक-4

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2082
December
A.D. 2025

परमागम श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

(गाथा ८० के प्रवचनमेंसे)

अर्हंतके स्वरूपको जानने पर स्वका ज्ञान होता है। अर्हंतके स्वरूपको जानने पर सबका ज्ञान होता है।

अरिहंत ज्ञान, दर्शन, चारित्रसे परिपूर्ण है और अस्तिसे और अरिहंतके अज्ञान, रागद्वेषकी अपूर्णता बिलकुल नहीं है यह नास्तिसे–ऐसे दोनों प्रकारसे अरिहंतका स्वरूप जाना उसे सभीका ज्ञान होता है। उसमें परिपूर्ण ज्ञानस्वरूप अशरीरी सिद्धिका ज्ञान होता है। सम्यग्दर्शन हो लेकिन अपूर्णता हो ऐसे साधक-आचार्य, उपाध्याय, साधुका ज्ञान होता है। ज्ञानतत्त्वसे विरुद्ध मनानेवाले, शुभमें धर्म और अपूर्णतासे लाभ मनानेवाले मिथ्यादृष्टिके स्वरूपका ज्ञान होता है। अर्थात् अरिहंतको जानते स्वयंको जाना और स्वयंको जानने पर सिद्धजीव, बाधकजीव सभीका ज्ञान होता है। सोलह आना शुद्ध सुवर्णमें ''नेशनल लगडी''की महोर लगानेमें आती है। वह अरिहंतके स्वरूपको यथार्थरूप जाननेवाला ''क्षायिक समकित''की महोर मारता है जो क्षायिक समकित केवलज्ञानको प्रकट करता है।

जो जीव अरिहंतका स्वरूप द्रव्य, गुण, पर्यायसे जानता है वह स्वयंके आत्माको जानता है और स्वयंके आत्माको जानने पर आत्माका ज्ञान होता है। अन्वय वह द्रव्य है, अनुसरण करके नित्य रहे ऐसी वस्तुको अन्वय कहा जाता है। 'आत्मा, आत्मा' ऐसाका ऐसा सदृश रहता है इसलिए अन्वय वह द्रव्य है। अन्वयका विशेष गुण है। आत्माका विशेष

श्री नेमिनाथ जिन-स्तुति	इम सिद्धक्षेत्र धर तीर्थ भया, अब भी ऋषिगणसे पूज्य थया;	श्री स्वयंभू–स्तोत्र

अर्थात् ज्ञान, दर्शन आदि गुण है। द्रव्य वह सामान्य और गुण वह विशेष है। अन्वयके व्यतिरेको (भेद) वह पर्याय है। व्यतिरेक अर्थात् अवस्था, एकके बाद एक हो वह, पृथक् पृथक् अवस्थाएँ होती है।

सभी प्रकारसे शुद्ध ऐसे अरिहंतके स्वरूपको ख्यालमें लेता है। यहाँ अरिहंत भगवानको योग तथा क्रियावती शक्ति आदिकी अशुद्धता होने पर भी अनंत चतुष्टय प्रकट हो गया है इसलिये सर्वतः विशुद्ध कहनेमें आया है। अरिहंतका द्रव्य ऐसा ही ऐसा रहता है। वह द्रव्य, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि अनंत शक्तियाँ विद्यमान है वह अर्हंतके गुण और केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि अर्थपर्यायोंको शरीर प्रमाण आत्माका आकार वह व्यंजन पर्याय ऐसा एक के बाद एक पर्यायें होती ही रहती हैं।—ऐसे अरिहंतके स्वरूपका ख्याल करने पर स्वयंका आत्मा मन द्वारा समझ लेता है।

यह चेतन है वह सदाकाल–'चेतन चेतन' ऐसा सदृश रहनेवाला कहो या अन्वय कहो वह द्रव्य है। अन्वयको (चेतनके) आश्रित विद्यमान चैतन्य (ज्ञान दर्शन ऐसे) जो विशेषण वह गुण है और अन्वय व्यतिरेको अर्थात् चैतन्यकी पर्यायें–जो एक-दूसरेमें प्रवर्तती नहीं है और जिसकी मर्यादा एक समयकी है ऐसे व्यतिरेकोंको पर्याय कहा जाता है। जो पर्याय आत्माके परिणमनकी गांठ है। ऐसा तो अभी मनद्वारा विकल्पसे जानता है। यह अभी सम्यग्दर्शन नहीं है उसे व्यवहारशुद्धि अथवा चित्तशुद्धि कहते है। अरिहंतके स्वरूपको जानते नव तत्त्वका जानपना होता है।

(१) द्रव्य, गुण अभेद जानने पर जीवतत्त्वका ज्ञान होता है। अरिहंतके पर्यायको जानने पर मोक्षतत्त्वका ज्ञान होता है। अरिहंतकी ओर स्वयंको शुभ विकल्प उत्पन्न हो वह पुण्य है–ऐसे पुण्यतत्त्वका ज्ञान होता है। अरिहंत की ओर सर्वथा विकल्प नहीं और संसारकी ओर विकल्प हो वह पाप है–उस पापतत्त्वका ज्ञान होता है। पुण्य-पाप दोनों आस्रव है। पुनश्च अरिहंतका स्वरूप परिपूर्ण जिसमें नहीं वह आत्माकी अपूर्णताका खयाल आने पर आत्मा कहीं अटका हुआ है–ऐसा नक्की होता है। इसलिये आस्रव, बंध होते है वह परके लक्षसे होते है इसलिये पर–अन्य पर जीवको अजीव पदार्थका ज्ञान होता है। पुनः साधकजीव परिपूर्ण स्वरूप प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ करता है उसे संवर-निर्जरा होती ही-उस परसे संवर-निर्जराका ज्ञान होता है। इस प्रकार नव तत्त्वका ज्ञान होता है।

जो प्रीति हृदयधर आवत हैं,
गिरनार प्रणम सुख पावत हैं।१२८।

पुनः अरिहंतके स्वरूपको जानते नय, निक्षेप, प्रमाणका भी ज्ञान होता है।

(२) त्रिकाली द्रव्यको अभेद ख्यालमें लेनेवाला ज्ञानका अंश वह निश्चयनय है। पर्यायको ख्यालमें लेनेवाला अंश वह व्यवहारनय है। संपूर्ण त्रिकाली आत्मा तथा वर्तमान दोनोंको एक साथ ख्यालमें लेनेवाला श्रुतज्ञान वह प्रमाण है। ज्ञान जिस विषयको ख्यालमें लेता है वह निक्षेप है।

(३) अरिहंतके स्वरूपको जानते यथार्थ त्याग, वैराग्यका ज्ञान होता है। श्रीमद्जीने कहा है कि ''त्याग, वैराग्य न चित्तमें हो न सके उसे ज्ञान'' उसका अर्थ ऐसा है कि चैतन्य स्वभावकी रुचि होने पर तीव्र आसक्तिभाव तथा चैतन्यके विरुद्धभावका त्याग होता है। चित्त परपदार्थोंकी ओरसे छूटकर स्व समझनेको तत्पर हुआ वह ही त्याग, वैराग्य है। परपदार्थकी ओर रुचि किसलिये खिसकती है और स्वकी ओर क्यों झुकती है उसके कारणका यथार्थ ज्ञान करने पर मिथ्यात्वकी मंदतामें रागद्वेषकी मंदताके परिणाम होते है उसे श्रीमद्जीने त्याग, वैराग्य कहा है। चित्तमें प्रथम द्विधामें था वह समाप्त होने पर आत्माकी तैयारीवाला जीव हुआ।

(४) अर्हंतका स्वरूप जाननेमें चारों लब्धि आ जातीं है।

* अर्हन्तका स्वरूप समझे इतना क्षयोपशम है उसे क्षयोपशमलब्धि कहते है।
* तत्त्व समझनेको तैयार हुआ इतनी कषाय अल्प हुई उसे विशुद्धिलब्धि कहते है।
* अर्हन्त द्वारा उपदेशित तत्त्वको धारण करना उसे देशनालब्धि कहते है।
* ऐसी योग्यतावाले जीवको द्रव्यकर्म अति मंद हो जाते है उसे प्रायोग्यलब्धि कहते है।

इस प्रकार अर्हन्तका स्वरूप जानने पर द्रव्य-गुण-पर्यायका, नव तत्त्वका, त्याग, वैराग्यका ज्ञान होता है। चारों लब्धियाँ होती हैं। यह चित्तशुद्धि है, पुण्यका कारण है। सम्यग्दर्शनरूपी महलमें प्रवेश करनेका आंगन है।

अब, इस प्रकार त्रिकाली आत्माको मनसे जानता हुआ चित्तशुद्धिवाला जीव सम्यग्दर्शन किस प्रकार प्राप्त करता है उसकी बात करते है।

मोतीके हारमें हार वह अन्वय (विशेष) अर्थात् द्रव्य है। सफेदी आदि वह विशेषण-गुण है और पृथक्-पृथक् मोती वह व्यतिरेक-पर्यायें है। उन तीनोंका लक्ष छोड़कर मात्र संपूर्ण हारका लक्ष कराके आत्मामें दृष्टांत बिठाते है। यहाँ झूलता हुआ हार दृष्टांतमें लेकर आत्मा परिणमनशील है लेकिन कूटस्थ नहीं–ऐसा बताना है।

जिननाथ! जगत् सब तुम जाना,
युगपत् जिम करतल अमलाना;

जैसे पृथक्-पृथक् मोतीको झूलते हुए हारमें कहा जाता है वैसे चेतन पर्यायोंको चेतनमें ही अंतर्गत करना अर्थात् जो पर्यायें देव-गुरु-शास्त्र आदि परपदार्थोंकी ओर जा रही थी उसें चेतनकी ओर झुकाकर अभेद करना, तथा ''विशेष्य वह चेतनद्रव्य और विशेषण वह चैतन्य आदि गुण–ऐसे गुणगुणी भेदकी कल्पना अदृश्य करना। जैसे हारकी सफेदाईको हारमें अतर्गर्भित किया जाता है उसी प्रकार ज्ञान, दर्शन आदि गुणोंको चेतनद्रव्यमें अंतर्गर्भित करना और मात्र आत्माको ही जानना।

यहाँ पर्यायको और गुणको द्रव्यमें अंतर्गर्भित करनेका कहा गया है तो पर्यायें या गुण द्रव्यसे बाहर नही हैं। द्रव्यमें ही है, लेकिन विकल्प द्वारा गुणगुणी भेद होता है लेकिन द्रव्यके आश्रयसे ऐसा भेद उत्पन्न होता नहीं है, और गुण-पर्याय द्रव्यके साथ अभेद होती है उसे द्रव्यके साथ अंतर्हित किया–ऐसा कहनेमें आता है।

जैसे हार पहिनते समय मात्र हारको ही जाननेमें आता है वैसे केवल आत्माको जानते समय कर्ता-कर्म-क्रियाका विभाग क्षय होता जाता है। आत्माके लक्षसे शुद्धता प्रकट होगी इसलिये आत्मा शुद्धताका कर्ता है। शुद्धताका प्रकट होना वह आत्माका कर्म है, और शुद्धताकी अवस्था पश्चात् अन्य शुद्धताकी अवस्थाका होना वह आत्माकी क्रिया–ऐसे कर्ता-कर्म-क्रियाके भेद विकल्प है वह तब तक रहते है। आत्माकी ओर झुकने पर असंख्य समय हो जाते है तब तक ऐसे सूक्ष्म भेदके विकल्प रहते है। यहां तब तक अभी विकल्पात्मक दशा है, लेकिन द्रव्यकी ओर पुरुषार्थ ढलने पर कर्ता-कर्म-क्रियाके भेद टल जाते है और निष्क्रिय ज्ञान प्रमाण वस्तुका अनुभव होता है। यहाँ निष्क्रिय कहा है उसका अर्थ यह है कि उस क्रियामें राग नहीं लेकिन स्वयंकी ज्ञानक्रिया ही है।

प्रश्न : ध्यानके समय शरीरकी स्थिति कैसी होती है?

उत्तर : आत्माके ध्यानको शरीरकी क्रियाके साथ सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न : तो फिर चलते-फिरते ध्यान हो सकता है?

उत्तर : चलते-फिरते समय मनका अवलम्बन है इसलिये ध्यान उस समयका विषय नहीं है तथा शास्त्रके लक्षसे भी ध्यान होता नहीं है।

प्रश्न : शरीरके बैठने पर ध्यान हो सकता है?

उत्तर : आत्मा आत्मामें बैठे तब ध्यान हो सकता है और शरीरकी स्थिति तब हलन-चलनरूप नहीं होती है। (क्रमशः)

इन्द्रिय वा मन नहिं घात करें,
न सहाय करैं, इम ज्ञान धरें।१२९।

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-४३ (गाथा-३८)

जडेश्वर, विभावेश्वर और परमेश्वर

यह श्री इष्टोपदेश शास्त्र है। ३९वीं गाथाका भावार्थ चल रहा है। उसमें मुनिराज कहते है कि धर्मी जीव ऐसे होते हैं कि वे समस्त संसारको इन्द्रजाल समान जानते है। स्वयंके आत्माके अतिरिक्त सभीमें उन्हें उपेक्षाबुद्धि हो जाती है।

धर्मीको सर्व पदार्थोंसे उपेक्षाबुद्धि हो गई है, क्योंकि वह जानता है कि शरीर, मन, वाणी, कीर्ति, स्त्री, मकान, गाँव, नगर आदि सभीमें जो कोई बदलाव होते है वह उनसे ही होते है। उसमें मेरा कोई अधिकार नहीं है। अज्ञानी उसे स्वयं अधिकारी मानता है वह उसका अज्ञान है। क्योंकि जड़का अधिकारी जड़ है, चेतन नहीं।

जैसे इन्द्रजाल वह कोई वस्तु नहीं है। वैसे स्वयंके लिये बाह्यवस्तु वह अवस्तु ही है। तो उसमें ग्रहण-त्याग, लेना-रखना, लेना-देना वह मिथ्या अभिप्राय है। इन्द्रजाल अर्थात् कुछ भी होता नहीं है वह तो ऐसे आभास उपस्थित कर देना उसका नाम इन्द्रजाल कहा जाता है। वैसे परपदार्थमें बदलना करना वह वस्तुके स्वरूपमें ही नहीं है, फिर भी अज्ञानी अपनी मिथ्याबुद्धिसे ऐसा मानता है कि मैं परका ग्रहण-त्याग करता हूँ, परकी हिंसा करता हूँ, परकी दया कर सकता हूँ ऐसा मिथ्या अभिमान उपस्थित करता है।

ज्ञानीको परमें कर्तापनेकी ऐसी मिथ्याबुद्धि नहीं होनेसे परसे उपेक्षाबुद्धि करके ज्ञानी तो स्वयंको चिदानंद स्वरूप आत्माकी प्राप्ति हेतु प्रयत्न करता है। क्योंकि अंतरकी चीज स्वयंके पुरुषार्थसे ही प्राप्त होती है। बाह्य चीज पुरुषार्थसे प्राप्त होती नहीं है।

परसे मुझे कुछ लाभ-हानि नहीं है और मुझसे परको लाभ-हानि नहीं ऐसा निर्णय हो गया होनेसे ज्ञानीको परपदार्थ प्रति उपेक्षावृत्ति वर्तती है तदपि अस्थिरताके दोषके कारण पूर्वके संस्कारवश मन-वचन-कायासे कोई प्रवृत्ति कर बैठे तो वहाँसे वापिस मुड़कर फिर पश्चात्ताप करता है कि अरे ! यह मैंने आत्माका अहित क्यों किया ?

यातें हे जिन ! बुधनुत तव गुण,
अद्भुत प्रभावधर न्याय सगुण;

जिसको स्वात्म-संवेदन करनेमें आनंद आता है ऐसे धर्मी जीव चराचर पदार्थमें स्थावर-जंगमरूप समस्त बाह्य पदार्थोंमें बदलाव करना वह मेरी बुद्धिका मेरे प्रयत्नका विषय ही नहीं है ऐसा जानकर उससे उपेक्षाबुद्धि करता है।

बंध अधिकारमें यह बात आती है कि किसीको मारना-जीवित रखना, सुखी-दुःखी करना वह जीवकी बुद्धिका विषय ही नहीं है। क्योंकि जीवके प्रयत्नसे वह कार्य होता नहीं है। प्रत्येक वस्तु स्वयंके कारणसे परिणमित हो रही है। उसमें बदलाव करना वह जीवके अधिकारकी बात नहीं है। तो फिर जो स्वयंके स्वरूपप्राप्तिके उद्यममें तत्पर है ऐसे धर्मी जीव परपदार्थमें बदलाव करनेकी बुद्धिसे क्या कार्य करे? करता ही नहीं है। वह जानता है कि इन्द्रजाल सर्प के हार जैसा कुछ है ही नहीं, तो हार ग्रहण करनेकी और सर्प छोड़नेकी बुद्धि किसके लिये करता है? करता नहीं है।

देखो ! यह कपड़े पहनना, टोपी निकालना, रखना, खाना-पीना कमाना यह कोई जीवके अधिकारकी बात नहीं है। पुस्तको छपवाये तो जगतमें धर्मका फैलाव हो यह जीवकी बुद्धिका विषय नहीं है। मूढ अज्ञानी ऐसी बुद्धि करता है। यदि जीव परमें बदलाव करे तो जीव स्वयंकी और परकी ऐसे दो क्रियाका कर्ता हो जाय ऐसा तो कदापि बनता नहीं है। जो स्वरूपके श्रद्धा-ज्ञान और चारित्रमें परायण है ऐसे योगी परसे तद्दन उदासीन है कि जो होना हो वह हो। मैं उसका करता नहीं हूं। जाना हो तो चला जाय, मैं उसे रोक सकता नहीं हूं।

किसीको प्रश्न हो कि गृहस्थाश्रममें ऐसा कैसे हो सके? तो यहाँ कहते हैं कि गृहस्थाश्रममें भी सम्यग्दृष्टि ऐसा ही मानते है। वस्तुकी स्थिति ही ऐसी है। स्वयंके आत्माके अतिरिक्त पर आत्माकी एक भी रजकणकी पर्याय आत्माके श्रद्धा, ज्ञान, वीर्य या रागसे हो सकती नहीं है। स्वभावपर्यायसे भी परका कार्य होता नहीं है और विभाव-पर्यायसे भी परका कार्य होता नहीं है। ऐसे श्रद्धा-ज्ञान धर्मीको यथार्थ वर्तता है इसलिये उन्हें सभी परपदार्थसे उपेक्षाबुद्धि होती है। एक आँखकी पलक फरकाना वह भी जीवकी बुद्धिका या श्रद्धाका या ज्ञानके पुरुषार्थका कार्य नहीं है, वह कार्य स्वतंत्र जड़से होता है।

कोई पंडित ऐसी दलील करे कि शास्त्रमें ऐसे हजारों दृष्टांत आते है कि एक जीवने दूसरे जीवकी दया की। तो उसे कहते हैं कि भाई ! ऐसे दृष्टांत तो बहुत मिले लेकिन उसकी

चिंतन कर मन हम लीन भअे,
तुमरे प्रणमन तल्लीन भअे।१३०।

अपेक्षा समझना चाहिये न ! यह जीवके रागके कालमें सामने वाला जीव बच गया हो ऐसा कहा जाता है कि इसने उसको बचाया लेकिन वास्तवमें अन्य जीवकी पर्यायमें दूसरा जीव क्या बदलाव कर सकता है ? अन्यकी दया पालनेके भावमें तो स्वयंकी ही हिंसा होती है। मैं परका कार्य कर सकता हूँ ऐसी मिथ्याबुद्धिसे जीवकी स्वयंकी हिंसा होती है। स्वयंकी दया उसमें रहती नहीं है। त्यागीगण भी मिथ्याभ्रममें पड़े है कि हमने इतनी वस्तुका त्याग किया है। अरे ! वस्तु कहाँ आपकी थी तो आप त्यागी हो ! वास्तवमें तो आपने अपना ज्ञाता-दृष्टा धर्मको त्याग दिया और मिथ्याबुद्धिको धारण कर रक्खी है।

पूज्यपाद स्वामी कहते है कि यह इष्ट उपदेश है। जीव परद्रव्यकी रक्षा कर सकता है अथवा मार सकता है यह भगवानका उपदेश नहीं है। यह तो जीवका अहितकारी मिथ्या उपदेश आत्माके श्रद्धागुणका खून करनेवाला उपदेश है।

श्रोता :–तो फिर हमें शरीरका कुछ करना या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :–परका कुछ करना वह जीवका विषय ही नहीं है, फिर करना नहीं करना यह बात ही कहाँ रही ? मंदज्ञान हो या केवलज्ञान हो, मिथ्याश्रद्धा हो या क्षायिक सम्यक्त्व हो यह किसीका विषय ही नहीं है। फिर करनेकी बात कहाँ रही ! कर ही नहीं सकता।

जो पदार्थ है वह ही उसके विशेष कार्य-व्यवस्थित कार्यका कर्ता है। दूसरा कोई उसके विशेष कार्यको व्यवस्थित कर सकता ही नहीं है। कौन किसका उपकार करे ? कौन किसका अपकार करे ? कौन किसकी निंदा करे और किसकी प्रशंसा करे ? कोई किसीका कुछ भी कर सकता ही नहीं है। तदपि ऐसे कथन आते है वे सभी निमित्तके कथन हैं।

भगवान तीन लोकके नाथ कहते हैं कि जगतमें अनंत जीव और अनंत पुद्गल है। तो एक जीव या एक पुद्गल दूसरे जीव-पुद्गलका ग्रहण-त्याग करे तो उसका अस्तित्व ही कहाँ रहा? प्रत्येकका स्वतंत्र अस्तित्व है उसमें अन्यका हस्तक्षेप बिलकुल नहीं है।

तेरापंथी कहते हैं कि छहोंकायके जीवोंको नहीं मारनेका उपदेश भगवानने दिया और स्थानकवासी कहते हैं कि छहकायकी रक्षा करनेका उपदेश भगवानने दिया तब यहाँ कहते हैं कि भगवानने तो ऐसा ही उपदेश दिया है कि जगतमें अनंत द्रव्यों है उसका ज्ञान करना वह तेरा विषय है। छकाय जीवकी रक्षा करना या मारना वह तेरा विषय ही नहीं है। तेरा

श्री पार्श्वनाथ जिन-स्तुति	जय पार्श्वनाथ अति धीर वीर, नीले वादल विजली गंभीर;

विषय तो अनंत ज्ञान है, तूं तेरे स्वभावमें लीन होकर स्वभाव प्रकट करनेका पुरुषार्थ कर ! ऐसा भगवानने कहा है। दूसरेको दुःख नहीं देना, मारना नहीं, रक्षा करना ऐसा व्यवहारका उपदेश है लेकिन उसका अर्थ ऐसा है कि परको दुःख देनेका भाव नहीं करना, शेष जीव परको दुःख दे सकते है यह बात नहीं है।

अहाहा ! अर्धलोकके स्वामी और तीन ज्ञानके धारी ऐसे शक्रेन्द्र, इशानेन्द्र आदि सो इन्द्रोंकी उपस्थितिमें सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरकी छूटी हुई दिव्यध्वनिमें यह बात आयी कि तू तेरे स्वभावमें लीन हो जा ! परका कार्य करना वह तेरा विषय नहीं है इसलिये उसकी उपेक्षा करके तू तेरे स्वभावकी अपेक्षा कर ! भगवानकी यही वाणी ही संतों और मुनिओं शास्त्र द्वारा कह रहे है। प्रत्येक गाथामें माल भरा है।

इस आत्माकी अपेक्षासे सभी परद्रव्य अवस्तु है, अक्षेत्र है, अकाल है और अभाव है, इस अपेक्षासे यहाँ सारे जगतको इन्द्रजाल समान कहा है।

ज्ञानी-योगी परपदार्थकी उपेक्षा और स्वभावकी अपेक्षा करते है फिर भी अस्थिरतावश कोई परद्रव्य प्रति राग आ जाय तो वह रागसे हटकर पश्चात्ताप करता है कि अरे ! मुझे लाभरूप तो एक मेरा आत्मस्वभाव है उसे छोड़कर मैं यह विकल्पमें कहाँ आया ? मेरे अतिरिक्त सारा जगत इन्द्रजाल है उसमें मैं किसको रखू और किसे छोड दूँ और किसका नाश करूँ ? यह सभी विकल्प मुझे दुःखरूप है ऐसा कहकर ज्ञानी पश्चात्ताप करते है।

भगवानने यह जीवकी प्रभुता ऐसी देखी है कि उसकी प्रभुतासे परमें कोई बदलाव होता नहीं है और परद्रव्य उसकी प्रभुताको छोड़ते नहीं है। परमाणु भी ईश्वर है-जडेश्वर है इसलिये वे अपनी शक्तिसे कार्य करते है उसमें किसी अन्य द्रव्यकी अपेक्षा नहीं है।

एक जड़ेश्वर है। एक विभाव-ईश्वर है और एक स्वभाव-ईश्वर है। परमाणु स्वतंत्ररूपसे अपना कार्य करते है इसलिये वे जडेश्वर है। मिथ्यादृष्टि स्वतंत्ररूपसे विभावका स्वामी होता है। उसे कर्म विकार कराते नहीं है। स्वयं स्वतंत्ररूपसे अज्ञानी विकार करे, इसलिये मिथ्यादृष्टि विभावेश्वर है और मैं विभाव और परसे भिन्न ज्ञानानंद स्वभावी हूँ ऐसा जानते ज्ञानी सहजात्मस्वरूपके स्वामी स्वभावका ईश्वर है। परद्रव्यका और पुण्य-पापका स्वामी होता है वह मूढ मिथ्यादृष्टि विभाव-ईश्वर है। वह विभाव भी स्वयं छोड़े तो छूट जाते है। साक्षात् तीर्थंकर भी उस विभावको छुड़ा सकते नहीं है। (क्रमशः)✻

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

चौथे गुणस्थानसे ही निर्विकल्प अनुभव; गुणस्थानके अनुसार परिणामकी विशेष मग्नता; स्वानुभवकी तैयारीवाले जीवकी दशा।

''प्रश्न : –ऐसा अनुभव किस गुणस्थानमें कहा है ?

समाधान :–चौथे गुणस्थानसे ही होता है; परन्तु चौथे गुणस्थानमें तो बहुत कालके अंतरालसे होता है, और ऊपरके गुणस्थानमें शीघ्र-शीघ्र होता है।

प्रश्न :–अनुभव तो निर्विकल्प है, तब उसमें ऊपरके और नीचेके गुणस्थानोंका भेद कैसे ?

उत्तर :–परिणामोंकी मग्नतामें विशेषता है; जैसे दो पुरुष नाव (अथवा नाम) लेते हैं, और दोनोंके परिणाम नाव (नाम)में है; वहाँ एकके तो मग्नता विशेष है तथा दूसरेको अल्प है, उसीप्रकार (यहाँ स्वानुभवमें भी) जानना।''

चतुर्थ गुणस्थानका प्रारम्भ ही ऐसे निर्विकल्प स्वानुभवपूर्वक होता है; सम्यग्दर्शन कहो, चौथा गुणस्थान कहो या धर्मका प्रारम्भ कहो—वह ऐसे स्वानुभवके बिना नहीं होता। स्वानुभवको प्रत्यक्ष कहा, इसमें अतीन्द्रिय वचनातीत आनंद कहा, इसमें कोई विकल्प नहीं ऐसा कहा;–तब किसीको प्रश्न होगा कि ऐसा ऊँचा-अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष स्वानुभव किसको होता होगा ?–तो कहते हैं कि ऐसा अनुभव चतुर्थ गुणस्थानसे ही होता है। ऐसी निर्विकल्प आनन्ददशा गृहस्थ सम्यग्दृष्टिको भी मति-श्रुतज्ञानसे होती है। चौथे गुणस्थानमें विशेष-विशेष कालके अंतरसे कभी-कभी ऐसा अनुभव होता है। पहलीबार जब चतुर्थ गुणस्थान प्रकट हुआ तो निर्विकल्प अनुभव हुआ ही था, परन्तु बादमें फिरसे वैसा अनुभव कुछ विशेष कालके अंतरसे होता है; ऊपर-ऊपरके गुणस्थानोंमें वैसा अनुभव बारबार होता है। पाँचवें गुणस्थानमें चौथेकी अपेक्षा अल्प कालके अंतरसे अनुभव होता है; (यह बात अलग है कि चौथे गुणस्थानवाले कोई जीवको कभी तुरन्त भी ऐसा अनुभव हो जाय।) और छठवें-सातवें गुणस्थानवर्ती मुनिको तो बारबार अंतर्मुहूर्तमें नियमसे विकल्प तूटकर स्वानुभव होता

अति उग्र वज्र जल पवन पात,
वैरी उपद्रुत नहिं ध्यान जात।१३१।

है; सातवें गुणस्थानमें व इसके ऊपर तो निर्विकल्पता ही रहती है। सम्यग्दृष्टिको चतुर्थ गुणस्थानमें अधिकसे अधिक कितने कालके अन्तरसे स्वानुभव होता है–इसके सम्बन्धमें कोई चोक्कस नियम जाननेमें नहीं आया। छट्ठे-सातवें गुणस्थानके लिये तो नियम है कि अन्तर्मुहूर्तमें निर्विकल्प उपयोग होता ही है; यदि न हो तो मुनिदशा ही न टिके। मुनि दशामें कभी ऐसा नहीं होता कि लम्बे कालतक निर्विकल्पदशा न आवे और बाह्यप्रवृत्तिमें (सविकल्पदशामें) ही रहा करे। वहाँ तो अन्तर्मुहूर्तमें नियमसे निर्विकल्पध्यान होता ही है। मुनिदशामें कोई जीव भले ही लाखों-करोड़ों वर्षों तक रहे और उतने काल तक छट्ठा-सातवाँ गुणस्थान बारबार अंतर्मुहूर्तमें आया ही करे, इस हिसाबसे छट्ठे गुणस्थानका समुच्चयकाल उसे भले लाखों-करोड़ों वर्षोंका हो जाय, परन्तु एक साथ अन्तर्मुहूर्तसे विशेषकाल छट्ठा गुणस्थान रह नहीं सकता। छट्ठे गुणस्थानका काल ही अंतर्मुहूर्तसे अधिक नहीं, तब लम्बे काल तक नींद करनेकी तो बात ही कैसी ? भगवानने छट्ठे गुणस्थानको जो उत्कृष्ट काल कहा है वह उत्कृष्ट काल भी ऐसे जीवके ही होता है–जो कि वहाँसे गिरकर मिथ्यात्वमें जानेवाला हों; अन्य जीवको ऐसा उत्कृष्ट काल नहीं होता, वह तो उनसे कम कालमें विकल्पको तोड़के सातवें गुणस्थानमें चला जाता है। मुनिवर बारबार निर्विकल्परस पीते हैं।

अहो ! निर्विकल्पता तो अमृत है।

सभी मुनिवरोंको सविकल्पदशामें छट्ठा और क्षणमें निर्विकल्पध्यान होने पर सातवाँ गुणस्थान होता है। जैसे सम्यग्दर्शनका उद्भव निर्विकल्प स्वानुभवपूर्वक होता है वैसे मुनिदशा भी निर्विकल्प ध्यानसे ही प्रकटती है–पहले तो ध्यानमें सातवाँ गुणस्थान प्रकट होता है और बादमें विकल्प आने पर छट्ठा गुणस्थान होता है। मुनिको तो निर्विकल्प ध्यान बारबार होता है; वह तो केवलज्ञानका एकदम निकटका पडौसी है। अहा, बारबार शुद्धोपयोगके आनंदमें झूलनेवाले उस मुनिकी अन्तर्दशाकी क्या बात ! अरे, सम्यग्दृष्टि श्रावकको भी ध्यानके समयमें तो मुनि जैसा गिना है। मैं श्रावक हूँ कि मुनि हूँ–ऐसा कोई विकल्प ही उसे नहीं है, ध्यानके समयमें तो उसे आनंदके वेदनमें ही लीनता है। चौथे गुणस्थानमें ऐसा अनुभव किसी वक्त होता है बादमें जैसे जैसे भूमिका बढ़ती जाती है वैसे वैसे कालकी अपेक्षासे बारबार होता है और भावकी अपेक्षासे लीनता बढ़ती जाती है।

धरणेन्द्र नाग निज फण प्रसार,
बिजलीवत् पीत सुरंग धार;

चौथे गुणस्थानमें स्वानुभव दीर्घकालके अंतरसे होनेका कहा और ऊपरके गुणस्थानमें वह शीघ्र-शीघ्र होनेका कहा; इस प्रकार गुणस्थान अनुसार मात्र कालके अंतरकी ही विशेषता है या अन्य भी कोई विशेषता अनुभवमें है?–तो कहते हैं कि परिणामोंकी लीनतामें भी विशेषता है। स्वानुभवकी जाति तो सभी गुणस्थानोंमें एक है, चैतन्यस्वभावमें ही सभीका उपयोग लगा हुआ है, परन्तु इसमें परिणामोंकी मग्नता गुणस्थान अनुसार बढ़ती जाती है। सातवें गुणस्थानमें स्वानुभवमें जैसी लीनता है वैसी तीव्र लीनता चौथे गुणस्थानमें नहीं है; इस प्रकार निर्विकल्पता दोनोंके होने पर भी परिणामकी मग्नतामें विशेषता है। जैसे कोई दो पुरुष एकसी क्रिया करते हों–भगवानता नाम लेते हो, स्नान करते हों या भोजनादि करते हों–दोनोंके परिणाम उसमें लग रहे हों, फिर भी परिणामकी एकाग्रतामें दोनोंमें फर्क होता है; किसीका परिणाम उसमें मन्दरूप लगा हो और किसीका तीव्ररूपसे लगा हो; वहाँ दोनोंका उपयोग तो एक ही कार्यमें लगा है परन्तु एकका परिणाम उस कार्यमें मंदरूप वर्तता है और दूसरेका परिणाम उसमें तीव्र रूपसे वर्तता है; वैसे चौथे गुणस्थानमें निर्विकल्पता हो और सातवें गुणस्थानमें निर्विकल्पता हों–वहाँ इन दोनोंका उपयोग तो आत्माके अनुभवमें ही लगा है, परन्तु स्वरूपमें परिणामकी मग्नता चौथेकी अपेक्षा सातवें गुणस्थानमें बहुत है; अन्दरमें अबुद्धिपूर्वकका राग बहुत मंद है। चौथे गुणस्थानमें स्वानुभवके समय भी अन्दर अबुद्धिपूर्वक (भले ही मन्द) तीन कषायचौकड़ी विद्यमान है जब कि सातवें गुणस्थानमें मात्र एक संज्वलन-कषायचौकड़ी ही शेष है। स्वानुभवमें परिणामोंकी लीनता जैसे जैसे बढ़ती जाती है वैसे वैसे कषायोंका अभाव होता जाता है।

इस प्रकार गुणस्थान अनुसार स्वानुभवकी विशेषता जाननी। ज्यों ज्यों गुणस्थान बढ़ता जाय त्यों त्यों कषायें घटती जाँय और स्वरूपमें लीनता बढ़ती जाय। धर्मीको गुणस्थान अनुसार जितनी शुद्धि हुई और जितनी वीतरागता हुई इतनी शुद्धि व वीतरागता तो पर तरफके उपयोगके समयमें भी विद्यमान रहती है और इतना तो बन्धन उसे होता ही नहीं। चौथे गुणस्थानमें निर्विकल्प ध्यानमें हो तब भी वहाँ अनंतानुबंधीके बिना तीनों कषायोंका अस्तित्व है, जब कि छट्ठे गुणस्थानमें शुभ-विकल्पमें वर्तते हों तब भी वहाँ अप्रत्याख्यानावरण या प्रत्याख्यानावरण कषाय नहीं है, मात्र संज्वलन कषाय है; अतः जो स्वानुभूतिमें न हो ऐसे जीवको अन्यसे अधिक ही कषाय हो–ऐसा नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि एक ही

श्री पार्श्व उपद्रुत छाय लीन,
जिम नग तडिदम्बुद सांझ कीन।१३२।

भूमिकावाले जीव जब वह सविकल्पदशामें हो इनसे निर्विकल्पदशाके समय उसकी कषायें अत्यन्त मंद हो जाती हैं। चौथे गुणस्थानमें स्त्रीपुत्रादिवाले श्रावकको, अरे ! आठ वर्षकी बच्चीको या तिर्यंचको भी उस निर्विकल्पदशाके समयमें बुद्धिपूर्वकके समस्त रागद्वेष छूट गये हैं, मात्र आनन्दसागरमें उमड़ता हुआ चैतन्यबिम्ब देहसे भिन्न अनुभवमें आता है। अतएव ऐसे ध्यानके समयमें तो श्रावकको भी मुनिसमान गिना है। इस ध्यानमें ज्ञानादिकी निर्मलता भी बढ़ती जाती है, परिणामकी स्थिरता भी बढ़ती जाती है।

ज्ञानी संसारमें गृहस्थपनेमें रहा हो, राग-द्वेष-क्रोधादि क्लेशपरिणाम कुछ होते हों, परन्तु उसे वे लम्बे काल तक नहीं चलते; संसारके कोई भी कार्य क्लेशप्रसंग या प्रतिकूलताके प्रसंग हो, परन्तु चैतन्यध्यानकी स्फुरणा होते ही वह सब क्लेश दूर भाग जाते हैं; कोई भी प्रसंग में उसका श्रद्धा-ज्ञान घिर नहीं जाता। चिदानन्द-हंसके स्मरणमात्रसे ही जब दुनियाके सब क्लेश दूर चले जाते हैं तब उस चैतन्य अनुभवमें क्लेश कैसा ? उसमें तो अकेला आनन्द ही है... अकेली आनन्दकी ही धारा बहती है। इसलिये कहते हैं कि अरे जीवों ! इस चैतन्यस्वरूपके चिन्तनमें क्लेश तो जरा भी नहीं और इसका फल महान है, महानसुखकी प्राप्ति इसके चिन्तनमें होती है, तब क्यों इसके चिन्तनमें अपना उपयोग नहीं लगाते हो ? और क्यों उपयोगको बाहर ही घुमाते हो ? ज्ञानीको अन्य सब रहते हुए भी, भीतरमें उसने चैतन्यकी जड़ीबूंटी अपने हाथमें रक्खी है, यह बूंटी संसारके विषको दूर करनेवाली है; इस चैतन्यबूंटीको सूंघते ही संसारकी उसकी थकान क्षणभरमें दूर हो जाती है।

जीवको शुद्धात्मचिंतनका अभ्यास करना चाहिये। जिसको चैतन्यके स्वानुभवका रंग लगे उसको संसारका रंग नहीं रहता। भाई ! तू अशुभ एवं शुभ दोनोंसे दूर होगा तभी शुद्धात्माका चिंतन होगा। अरे, जिसे पापके तीव्र कषायोंसे भी निवृत्ति नहीं, देव-गुरुकी भक्ति, बहुमान, साधर्मिओंका प्रेम इत्यादि अत्यन्त मंद कषायकी भूमिकामें भी जो नहीं आया, वह अकषाय चैतन्यका निर्विकल्प ध्यान कैसे करेगा ? पहले सब कषायका (शुभ-अशुभका) रंग अंतरमेंसे निकल जाय....जहाँ उसका रंग न रहा वहाँ उसकी अत्यन्त मंदता तो सहज ही हो जायेगी, और चैतन्यका रंग लगनेसे इसकी अनुभूति प्रकट होगी। अन्यथा, परिणामको एकदम शान्त किये बिना वैसे ही अनुभव करना चाहे तो वह नहीं हो सकता। अहा ! अनुभवी जीवकी अन्तरकी दशा कोई और ही होती है !

(अब आगे, स्वानुभवको निर्विकल्प कहा तत्सम्बन्धी प्रश्न-उत्तर द्वारा स्पष्टता करते हैं :) (क्रमशः)*

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन) (प्रवचन : ८)

मुक्तिमार्गका पथिक जैनी

यदि तुम्हें सत्की रुचि हुई है तो, 'यदि सत्की विशेष प्रसिद्धि हो तो जगतके जीवोंको सत्का लाभ मिले' इस प्रकारकी भावनासे तुम यथार्थरीत्या सुखरूप देव-गुरु-धर्मकी प्रभावनादिके कार्यमें प्रवृत्ति क्यों नहीं करते हो ? हम तो कहेंगे कि तुम्हें देवकी यथार्थता ही ज्ञात नहीं हुई। यहाँ पर प्रभावना इत्यादिमें सुखरूप (अपने हर्षपूर्वक) प्रवृत्ति करनेको कहा है, किसीके कहनेसे, कानूनसे, जातिके रिवाजसे या लोकभयसे प्रवृत्ति करनेकी बात नहीं है। किन्तु स्वयं ही भक्तिसे देव-गुरु-धर्मकी प्रभावना इत्यादिमें उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति करनी चाहिये।

जिस प्रकार रोगीको दवा करना नहीं रुचता तो समझना चाहिए कि उसका मरण निकट है, उसीप्रकार तुम्हें देव-गुरु-धर्मके लिए उल्लास नहीं होता तो समझना चाहिए कि तुम्हारा भविष्य बुरा है। जो देव-गुरु-धर्मके लिये लोभ करता है उसके समान कपटी कोई दूसरा नहीं है। वीतरागदेवने जिसे स्वीकार कर लिया है कि ''यह प्राणी योग्य है'' उसके समान उत्तम और दूसरा कौन हो सकता है ? और वीतरागकी वाणीमें जिसका अस्वीकार किया गया कि ''यह प्राणी योग्य नहीं'' तो उसके समान हलका और कौन होगा ?

जैसे कोई स्त्री अज्ञानसे पर पुरुषको अपना पति मानकर उसकी सेवा-भक्ति किया करती थी, उसे अच्छे अच्छे भोजन जिमाया करती थी, किन्तु जब बहुत समयके बाद भाग्योदयसे उसे अपना सच्चा पति मिला और उसको पहचाना तब, वह स्त्री पहले जो उत्साह परपुरुषके लिये रखती थी वह अपने सच्चे पतिके लिए शक्य होने पर भी नहीं करती, उसके साथ प्रेम और उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति नहीं करती तो निश्चयतः वह कुलटा ही है, उसे अपने सच्चे पतिके प्रति प्रेम ही नहीं है, इसीप्रकार तुम भी प्रथम तीव्र अज्ञानसे मिथ्यादेव और कुगुरुको सच्चा मानके उसके लिए रसपूर्वक प्रवृत्ति करते थे और अब बहुत बड़े सौभाग्यसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु मिले हैं–सच्चे स्वामी जिनदेवकी प्राप्ति हुई है कि

प्रभु	ध्यानमयी	असि	तेजधार;
कीना	दुर्जय	मोह	प्रहार;

जिनसे सुख मिलता है और जन्म-मरणका दुःख दूर होता है, उनकी प्राप्ति होने पर भी तुम भी पहलेकी तरह तन, मन, धनसे भक्ति इत्यादिमें प्रवृत्ति नहीं करते हो तो तुम भी कुलटा स्त्रीके समान हो। उस कुलटा स्त्रीके समान ही तुममें भी महामिथ्यापन भरा हुआ है। अपनेको धर्मात्मा कहलवाता है, वीतरागका सेवक कहलवाता है किन्तु वीतरागदेवके कार्योंमें सहर्ष प्रवृत्ति नहीं करता, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। तेरा बड़ा कपट है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि भाई ! तुम्हीं विचार कर देखो कि यह दोष तुममें है या नहीं ? हम तुम पर जबर्दस्ती दोषारोपण नहीं करते, किन्तु यदि तुम्हारे अन्तरंगमें इसी प्रकारकी प्रवृत्ति बनी रही तो वह दोष तुम्हारे घरमें स्वयं दौड़कर आयगा।

कुगुरु-कुदेवको छोड़कर सच्चे देव और सच्चे गुरुके प्रति यथार्थ रसरूप हर्षपूर्वक कार्य करेगा तभी धर्मीपन आयगा। मात्र कोरी बातोंसे धर्मीपन नहीं आता। पहले सच्चे देव-गुरुकी भक्ति, बहुमान, विनय यह सब भले हो किन्तु कुछ लोग तो उसीमें धर्म मानकर अटके पड़े हैं वे यथार्थ वस्तुको नहीं समझते; और कुछ लोगोंने जिनदेवकी प्रतिमा भक्ति पूजन इत्यादिका जड़मूलसे ही निषेध कर दिया है, वे भी वास्तविक तत्त्वको समझ नहीं पाये। पहले कुदेव, कुगुरुकी मान्यताको छोड़कर सच्चे देव-गुरु-धर्मको माननेसे अशुभभाव कम होकर शुभभाव बढ़ जाता है और धर्मका–वीतरागमार्गका उत्साह बढ़ता है। देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति आदिके शुभ परिणामसे शुभ फल मिलता है; जो सच्चे देव-शास्त्र-गुरुको मानता है उसके पूर्वकृत पाप भी कम हो जाता है और पुण्य बढ़ जाता है; उन दोनोंसे रहित आत्मस्वरूपकी पहिचान करना सो वर्तमान अपूर्व धर्म है।

यह खास ध्यानमें रखना चाहिए कि पुण्य-पाप तथा धर्म वह पैसेसे नहीं होता। पैसा जड़ वस्तु है, उससे आत्माका धर्म तो हो ही नहीं सकता। पैसेसे न तो पुण्य होता है और न पाप ही। पैसेका आना जाना जड़की क्रिया है, वह स्वयं जड़ है, उसका कर्ता जड़ है, आत्मा उसका कर्ता नहीं है, और आत्माको उस जड़की क्रियाका फल भी नहीं होता। जड़से भिन्न और पुण्य-पापके विकारसे भी रहित चैतन्यस्वभावकी सच्ची पहिचानके साथ श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरताका होना सो धर्म है। रूपये पैसेकी तरफ तीव्र तृष्णारूप जो पापभाव होता है उसे कम करके यदि तृष्णाको कम किया जाय और देव-

त्रैलोक्य पूज्य अद्भुत अचिन्त्य,
पाया अर्हंत पद आत्मचिन्त्य ।१३३।

गुरु-धर्मकी प्रभावना आदि कार्योंमें उपयोग लगावे तो उस भावसे पुण्य होता है। जीव अशुभभावको छोड़कर जब तृष्णाको कम करनेका भाव करता है तब धन इत्यादिका लोभ मन्द होने पर धन आदिक खर्च होता है, इसप्रकार लगभग निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध होता है, और यदि रूपये पैसे पर तीव्र तृष्णा करे तो उस भावसे पाप होता है; इसप्रकार आत्माके परिणामसे ही धर्म अथवा पुण्य-पाप होता है। धर्म आत्माकी शुद्ध क्रिया है, और पुण्य-पापके भाव आत्माकी अशुद्ध क्रिया है, तथा पैसे इत्यादिका आना जाना जड़की क्रिया है; आत्माकी क्रियाका कर्ता आत्मा है, और जड़की क्रियाका कर्ता जड़ है। आत्मा और जड़ दोनों पृथक् पदार्थ हैं, वे एक दूसरेका कुछ नहीं कर सकते।

इस प्रकार जड़ और चेतन दोनों पदार्थ भिन्न भिन्न हैं तथा उनके कार्य भी अलग अलग हैं, इतना समझ लेनेके बाद जीव अपने परिणामकी ओर देखता है; अपने परिणाममें पापभावसे बचनेके लिए पुण्यभाव आता है, वह पुण्यभाव भी विकार है और उस विकारसे रहित अविकारी भाव अर्थात् आत्मस्वरूपकी यथार्थ समझरूप जो भाव है वही धर्म है, इसप्रकार धर्म और पुण्यके बीचमें जो अन्तर है उसे समझना चाहिए। धर्मका उपाय यथार्थ समझका होना ही है। पुण्यधर्मका उपाय नहीं है क्योंकि पुण्य विकार है और धर्म अविकारी है। विकारके करते करते अविकारीपन कभी नहीं हो सकता।

पहले संसारसम्बन्धी अशुभभावको बदलकर और सच्चे देव-गुरु-धर्मको पहचानकर जब जीव उस ओरका शुभभाव करता है तब गृहीतमिथ्यात्वसे छूटता है, किन्तु सत्देव, गुरु और धर्मकी ओर जो शुभराग होता है उससे धर्म नहीं हो जाता। देव-गुरु-धर्मको बाह्यसे पहचानकर इस जीवने गृहीतमिथ्यात्व अनन्तबार छोड़ा फिर भी अपने आत्माके यथार्थ स्वरूपको नहीं समझ पाया, और इस सूक्ष्म मिथ्यामान्यताको नहीं छोड़ा कि पुण्यसे धर्म होता है, इसलिए उसे यथार्थ धर्म प्राप्त नहीं हुआ और वह अनन्त संसारमें चक्कर लगाता रहा। पहले देव, गुरुको पहचानकर देव-गुरुसे भिन्न तथा उनकी ओर जो शुभभाव है उससे भी यथार्थतः पृथक् ऐसे निज आत्माको पहचानकर उसकी श्रद्धा और स्थिरता करना सो धर्म है; ऐसा करनेवाला जैनी मुक्तिमार्गका पथिक है, उसीसे अनन्त संसारका नाश होकर अविनाशी सुखकी प्राप्ति होती है। यही है मुक्तिका मार्ग।

वंदन हो मुक्तिके मार्ग दिखानेवाले सन्तोंको ।

प्रभु देख कर्मसे रहित नाथ,
वनवासी तपसी आये साथ;

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

❊ समाधि-वर्णन ❊

चैतन्यस्वभावका अनुभव और वेदनका प्रकाश हो वह अनुभवप्रकाश है। चिदानन्दकी रुचि करके आत्मामें लीनता हो वह अनुभव, समाधि और मोक्षमार्ग है।

आगममें स्वरूपके वेदनका ही विधान है। मैं शुद्ध चिदानंद हूँ—ऐसी अन्तर्दृष्टिमें रमणता करनेका विधान सर्वज्ञोंने कहा है। कचाश रह जाए और शुभभाव हो ऐसा विधान मुख्यतः नहीं कहा। आत्मा एक समयमें परिपूर्ण चिदानन्द पिण्ड है, उसका वेदन मुख्यरूपसे करनेका विधान है। जो पर्यायको बिलकुल नहीं मानता उसे शुद्ध–अशुद्ध पर्यायका पिण्ड वह द्रव्य है ऐसा कहा है। यहाँ तो जिसे पर्यायका ज्ञान है उसको पर्यायदृष्टि छुड़वाकर त्रिकाल ध्रुव आत्मा शुद्ध है उसकी दृष्टि कराते हैं। आत्मा एक समयमें चिदानन्द परिपूर्ण है, उसकी दृष्टि करना ही विधान है और उसमें स्वाश्रयकी शक्ति द्वारा जितने अंशमें पुण्य–पापकी वृत्तिका अभाव हो उतनी समाधि है। स्वरूपका वेदन होना वह अस्तिसे बात कही है और विकारका अभाव होना वह नास्तिसे कहा है।

अब, यह अन्तिम अधिकार है, इसलिए इसमें सार–सार बात कहते हैं। यह चौथे गुणस्थानकी बात है। जितना सम्यग्ज्ञान–सम्यग्दर्शन है उसके प्रमाणमें अंतर्शान्तिका वेदन है। चौथे गुणस्थानमें भी अंशतः निर्विकल्प समाधि होती है और अंशतः शुद्ध उपयोग भी होता है। पूर्ण शुद्ध उपयोग तो बारहवें गुणस्थानमें होता है। यहाँ तो जितने अंशमें पुण्य–पापका अभाव हुआ उतने अंशमें आत्माका अनुभव होता है। त्रैकालिक चैतन्यज्योतिके आश्रयसे उत्पन्न हुआ जो भाव है वह निरुपाधि भाव है और जितना परलक्षसे हुआ भाव है वह उपाधिभाव है। उपाधिरहित भाव वह समाधि है।

लोग जिसे समाधि कहते हैं ऐसी यह समाधि नहीं है। तिलक आदि लगाकर कुम्भक, रेचक आदि करते हैं और ध्यानमें बैठते हैं वह कोई समाधि नहीं है। समाधिका

निजश्रम असार लख आप चाह,
धरकर शरण ली मोक्षराह ।१३४।

पता न हो और समाधिके पाठ पढ़ने लगें, उससे कहीं समाधि नहीं हो जाती।

आत्मामें विश्राम होने पर स्वरूपस्थिरता प्राप्त की, समाधि लगी, ज्ञानधारा निरावरण हुई, ज्यों–ज्यों निजतत्त्वको जाना त्यों–त्यों ज्ञानधारामें वृद्धि होने लगी। त्रिकाल शुद्ध द्रव्यका आश्रय करनेसे एकरूप धारा बढ़ती है, त्यों–त्यों विशुद्धता केवलसे और ज्ञानपरिणति परम पुरुषसे मिलकर निज महिमा प्रकट करे वहाँ अपूर्व आनन्दभावका दर्शन हो, तब स्वरूपसमाधि कहलाती है।

यहाँ निजतत्त्व अर्थात् त्रिकाल शक्तिरूप स्वभावभाव है। उसे जाननेपर विशुद्धता बढ़ती है तब वह परिणति, आत्मा त्रैकालिक स्वभावरूपी परम पुरुषमें एकाकार होकर अपनी महिमा ख्यालमें आईं तथा पूर्वमें जो एकसमय भी प्रकट नहीं किया था ऐसा आनन्द प्रकट हुआ उसे यहाँ समाधि कहते हैं। पहले कभी स्वर्गमें, मनुष्यादिमें कहीं भी जिसका अनुभव नहीं हुआ था ऐसा आनन्द प्रकट होता है।—ऐसा आनन्द वह समाधि है।

आत्मा निरंजन निर्विकल्परूप है; उसे जानकर अंतर्अवलोकनसे निर्विकल्प दशा प्रकट करना वह गिरिगुफामें प्रवेश है। बाह्यमें ग्राम, नगरादि छोड़कर पर्वतोंमें चला जाना वह गिरिगुफा नहीं है। आत्माके स्वरूपमें लीन होना उसे गिरिगुफामें प्रवेश किया कहा जाता है।

अनादि अज्ञानका भ्रमभाव जो आकुलताका मूल है वह भाव समाधि होने पर मिटता है। देखो, यहाँ कहते हैं कि अनादिके आकुलताभावका नाश कैसे होता है। पुण्य–पाप तो दुःख है, उस भ्रमभावको छोड़कर अन्तरोन्मुख होना वह आकुलताको नाश करनेका उपाय है। अनात्म अभ्यासके अभावसे सहजपदका भाव भानेसे भववासनाका विलय होने पर आत्माका परमपद दृष्टिगोचर होता है। सहज त्रैकालिक भावकी भावना भानेसे भवके विलासका नाश होता है। अनन्तकालसे जो प्राप्त नहीं हुआ था ऐसा चिदानन्द भगवानका लाभ प्राप्त होता है। स्वरूपकी दृष्टि करनेसे आत्माका लाभ प्राप्त हुआ। जो कभी मलिन नहीं हुआ था ऐसा चिदानन्द ज्ञायकस्वभाव है उसकी प्राप्ति होती है।

अपना ज्ञानस्वभाव ही सच्चा आश्रयधाम है,—ऐसी प्रतीति हुई कि चक्रवर्तीके नव निधान भी सड़े हुए तिनके जैसे लगते हैं। तीर्थंकरका समवसरण भी जड़ है, वह आत्मा नहीं है। अज्ञानीको तीर्थंकर नामकर्म नहीं होता। जगतका विधान असत्य और आत्मविधान

(शेष देखे पृष्ठ ३१ पर)

श्री पार्श्व उग्र कुल नभ सुचंद्र,
मिथ्यातम हर सत् ज्ञानचन्द्र;

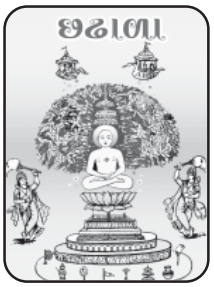

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(तीसरी ढाल, गाथा ४-५-६)

जीवतत्त्व और उसके भेदोंका वर्णन

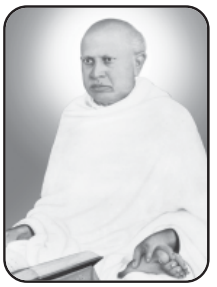

सात तत्त्वोंमेंसे जीवतत्त्व कैसा है उसकी यहाँ बात चल रही है। विदेहक्षेत्रमें देहसहित अरिहंत भगवंत सदा विद्यमान है, यहाँ भरतक्षेत्रमें भी ढाई हजार वर्ष पूर्व अरिहंत भगवंत साक्षात् विचरते थे, उन भगवंतोंने जीवादि तत्त्वोंका जैसा स्वरूप कहा वैसा ज्ञानीसंतोंने ग्रहण किया, स्वयं अनुभव किया और शास्त्रमें कहा; वह ही यहाँ कहा जाता है। संस्कृतभाषामें सिद्धान्तसूत्रोंकी प्रथम रचना करनेवाले उमास्वामी आचार्य वीतरागतामें झूलते परम दिगम्बर संत थे और कुंदकुंदाचार्यदेवके शिष्य थे, उन्होंने रचा हुआ तत्त्वार्थसूत्र वह जैनसिद्धान्तकी गीता समान है, जिस पर पूज्यपादस्वामी, अकलंकस्वामी और विद्यानंदीस्वामी जैसे महान आचार्योंने 'सर्वार्थसिद्धि' 'राजवार्तिक' तथा 'श्लोकवार्तिक' जैसी विशाल टीकाकी रचना की है। तत्त्वार्थसूत्रमें मोक्षमार्ग, सात तत्त्व आदि बहुतसे विषयोंका वर्णन किया है। प्रथम ही सूत्रमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रको मोक्षमार्ग कहा है, उसमें निश्चय सम्यग्दर्शननादिकी बात है। वैसे तो यहाँ सात तत्त्वोंकी बात की है, लेकिन वे सात तत्त्वोंको जानकर उसमेंसे शुद्धनयके विषयरूप शुद्धात्माको लक्षमें लेकर, उसके सन्मुख होकर निर्विकल्प प्रतीति करे ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शन सहितकी यह बात है। जैसे समयसारकी १३वीं गाथामें आचार्यदेवने कहा है कि 'जीवादि नव तत्त्वोंको भूतार्थसे जानना वह सम्यग्दर्शन है' वहाँ भूतार्थदृष्टि करते ही उसमें शुद्ध आत्माकी प्रतीति आई, और नव तत्त्वके विकल्प छूट गये।

शुद्धदृष्टिमें नव भेद नहीं है, उसमें तो मात्र शुद्धात्म भगवान ही आनंदसहित प्रकाशमान है; और ऐसे आत्माकी दृष्टिपूर्वक नव तत्त्वकी प्रतीतिका यह वर्णन है। मात्र नव तत्त्व रटता रहे और उसके विकल्पका अनुभव करता रहे, यदि शुद्धात्माको दृष्टिमें न ले तो उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं है, वह तो बहिरात्मा ही रहता है। यहाँ तो अंतरात्मा हुआ जीव, विकल्पसे पृथक् होकर नव तत्त्वको जैसे है वैसे ही जानता है उसकी बात है और उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। अंतरमें शुद्धात्मामें ही स्वामीत्वबुद्धि वर्तती है वह निश्चय

केवलज्ञानी सत् मग प्रकाश,
हूं नमत सदा रख मोक्ष-आश ।१३५।

सम्यग्दर्शन है। जहाँ जो अपेक्षा हो उसे समझना चाहिये। निश्चयश्रद्धाके विषयमें नव भेद नहीं आते है, उसमें तो मात्र निजरूपकी ही श्रद्धा है, जैसे राजाके साथ अन्य मनुष्योंको देखकर भी 'यह राजा आया' ऐसा उपचारसे कहा जाता है; वास्तवमें राजा तो वह नहीं है, पृथक् है वैसे शुद्धात्माकी दृष्टिरूप निश्चय सम्यक्त्व वह तो मोक्षमार्गमें राजा समान है, लेकिन उसके साथ नव तत्त्वकी प्रतीतको देखकर उसे भी 'यह सम्यग्दर्शन है' ऐसा उपचारसे कहा जाता है, वास्तविक सम्यग्दर्शन तो वह नहीं है, पृथक् है। लेकिन उसके साथ नव तत्त्वकी श्रद्धा आदि जो विकल्प होते है वे व्यवहारमें बताये ऐसे ही होते है। उससे विरुद्ध होते नहीं हैं।

व्यवहारमें भी सर्वज्ञ भगवानने जो तत्त्व दर्शाये है उससे विपरीत मान्यता धर्मीको होती नहीं है। अहा, यह तो निश्चय-व्यवहारकी संधिवाला अलौकिक जिनमार्ग है—वीतराग भगवंतों जिस मार्ग पर चले उस मार्ग पर जानेकी यह बात है। उसका प्रारम्भ वीतरागदृष्टि द्वारा होती है, रागसे उसका प्रारम्भ होता नहीं है।

जिन्होंने स्वयं श्रद्धा-ज्ञानमें पूर्ण ज्ञान आनंदस्वरूप आत्माको ग्रहण किया है। अनुभूति द्वारा अंतरमें स्वयंके परमात्मस्वरूपका अनुभव किया है वे अंतरात्मा मोक्षमार्गमें चलनेवाले है; वे अपनी पर्यायको भी जानते है। प्रथम अज्ञानदशामें बहिरात्मपना था, तब मैं एकांत दुःखी था, उस दशाको टालकर अब अंतरात्मपना हुआ है और आत्माका वास्तविक सुख अंशमें अनुभवमें आया है; अब शुद्ध आत्माका ही ध्यान द्वारा पूर्ण सुख परमात्मदशा अल्पकालमें होगी। इस प्रकार बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेदसे जीवको पहिचानना वह व्यवहारश्रद्धा है। यहाँ संक्षिप्तमें प्रयोजनरूप यह तीन प्रकार लिये हैं, शेष तो चौदह गुणस्थानके अनेक प्रकार है। एकेन्द्रियादि मार्गणा अपेक्षासे अनेक प्रकार है, ऐसा अनेक प्रकारके पर्यायभेदोंसे जीवको पहिचानना व्यवहार है, परमार्थमें तो अपने द्रव्य-गुण-पर्यायसे अभेद एकाकार शुद्ध जीव है, उसमें कोई भेद होते नहीं है। यहाँ जीवके अंतरात्मा आदि मुख्य तीन भेद कहे, असंख्य प्रकार कहा जाय तो पार न आये ऐसा है, और यह तीन भेदोंका स्वरूप यथार्थ पहिचानने पर अंदर हेय-उपादेयका विवेक होकर भेदज्ञानरूप प्रयोजन सिद्ध हो जाता है; यह तीन भेदोंको जाननेवाला जीव बहिरात्मपना छोड़कर अंतरात्मा होकर परमात्माको ध्याता है।

श्री महावीर जिन-स्तुति	तुम वीर! धवल गुण कीर्ति धरे, जगमें शोभै गुण आतम भरे; जिम नभ शोभै शुचि चंद्रग्रहं, सित कुंद समं नक्षत्र ग्रहं।१३६।

देहसे भिन्न चेतनारूप स्वयंका अस्तित्व है उसे न देखते, वह ही मैं हूँ–ऐसे देहको ही अपना मानकर, अथवा देहाश्रित रागादि भावरूपको ही स्वयंको अनुभव करके उस बाह्यभावोंमें ही जो वर्तता है वह बहिरात्मा है। स्वयं कौन और पर कौन? उसका भी उसे विवेक नहीं अर्थात् उस तत्त्वमें मूढरूप वर्तता है। रागादिभाव कोई अंतरस्वभावका आश्रयसे उत्पन्न हुआ नहीं है। अर्थात् वह जीवके अंतरंगभाव नहीं है, वह बाह्यवस्तुके आश्रयसे हुआ बहिर्भाव है जीवका अंतर्स्वभाव ज्ञान-आनंदमय शुद्ध है, उसके आश्रयसे हुआ सम्यक्दर्शनादि भावों वे अंतरंगभाव है; उसका जो अनुभव करता है वह अंतरात्मा है और बहिर्भावोंको ही जो अनुभव करता है वह बहिरात्मा है। परमें–बाह्यमें आत्मपना माने वह बहिरात्मा; अंतरमें परसे भिन्न आत्माको देखे वह अंतरात्मा; पूर्णपदको प्राप्त हुए वह परमात्मा।

जो बहिरात्मा है, वह भी ज्ञानस्वरूपी आत्मा ही है लेकिन अज्ञानसे वह बहिरात्मभावरूप परिणमित हुआ है; सम्यग्दृष्टिका आत्मा जैसा है वैसा जानकर बहिरात्मपना छोड़ दिया है और परमात्मपनेकी वह साधना करता है।

जो देहादिकी क्रियाको आत्माकी माननेवाला बहिरात्मा है, उसे देहसे भिन्न आत्माकी पहिचान नहीं है, ऐसे बहिरात्मा जीवोंको सम्यग्दर्शन होता नहीं है, और श्रावकपना या साधुपना भी उसे होता नहीं है। शरीरकी दशासे आत्माको धर्म-अधर्म होना जो मानते है वे सभी बहिरात्मा है–ऐसा निःशंक जानना। देखो, अन्य जीवोंकी भी ऐसी पहिचान हो सकती है। परमात्मा कैसे होता है ? अंतरात्मा कैसे होता है ? बहिरात्मा कैसे होते हैं ? उनका स्वरूप पहिचाना जा सकता है। उसे पहिचानकर क्या करना ? कि बहिरात्मपना छोड़ना; अंतरात्मा होकर परमात्मस्वरूप आत्माका ध्यान करना।

शरीर तो जड़ अजीव है, उसमें किसी जीवका धर्म घुस गया नहीं है। जीवकी पर्याय अजीवमें जाती नहीं है। बहिरात्मपना यह भी जीवकी पर्यायमें है, यह कोई शरीरमें नहीं है। अज्ञानसे वह माने चाहे कि मैं शरीरमें हूँ, यह मान्यता भी उसने पर्यायमें की है। अरे, शरीरसे आत्माकी भिन्नताको जो न जाने उसे तो शास्त्रकारने तत्त्वमूढ कहा है। चाहे उसने **B.A. M.A.** आदि लौकिक पढ़ाई की हो तदपि जीव-अजीवके भेदज्ञानरूप वीतरागी आत्मविद्यामें तो वह मूढ है; उसका लौकिक शिक्षण आत्माके हितके लिये किसी कामका नहीं है। आत्माके हितके लिये तो यह जीव-अजीवका भेदज्ञान करानेवाली वीतरागविद्या पढ़ने जैसी है।

(क्रमशः)

हे जिन ! तुम शासनकी महिमा, भविभवनाशक कलिमांहि रमा;
निज-ज्ञान-प्रभा अनक्षीण-विभव, मलहर गणधर प्रणमैं मत तव । १३७ ।

क्रमबद्धपरिणाममें छह–छह कारक

आचार्यदेव कहते हैं कि 'जीव अपने क्रमबद्धपरिणामरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव नहीं है;' उसमें छहों कारक लागू होते हैं, वह इस प्रकार हैं:–

१– जीव स्वयं अपनी पर्यायके कर्तारूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीवका कर्ता नहीं है।

२– जीव स्वयं अपने कर्मरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीवका कर्म नहीं है।

३– जीव स्वयं अपने करणरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीवका करण नहीं है।

४– जीव स्वयं अपने सम्प्रदानरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव का सम्प्रदान नहीं है।

५– जीव स्वयं अपने अपादानरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव का अपादान नहीं है।

६– जीव स्वयं अपने अधिकरणरूपसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव का अधिकरण नहीं है।

और इसी प्रकार अन्य छह कारक भी निम्नानुसार समझना चाहिए–

१– जीव अपनी पर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना कर्ता नहीं बनाता।

२– जीव अपनी पर्यायसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना कर्म नहीं बनाता।

३– जीव अपनी पर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना करण नहीं बनाता।

४– जीव अपनी पर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना सम्प्रदान नहीं बनाता।

५– जीव अपनी पर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना अपादान नहीं बनाता।

६– जीव अपनी पर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीवको अपना अधिकरण नहीं बनाता।

उसी प्रकार, अजीव भी अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है, जीव नहीं है।–उसमें भी उपरोक्तानुसार छह–छह कारक समझ लेना चाहिए।

–इस प्रकार, जीव–अजीवको परस्पर अकार्यकारणपना है।

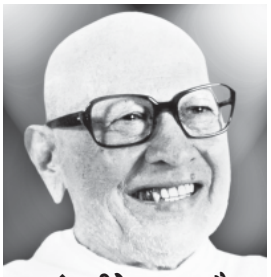

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–''पूर्णताके लक्षसे प्रारम्भ सो प्रारम्भ''—ऐसा श्रीमद् राजचंद्रजीने कहा है। वहाँ पूर्णताके लक्षसे प्रारम्भमें त्रिकाली द्रव्यको लेना अथवा केवलज्ञान पर्यायको लेना? कृपया स्पष्टीकरण कीजिये।

उत्तर :–यहाँ पूर्णताके लक्षमें साध्यरूप केवलज्ञान पर्याय लेना। त्रिकाली द्रव्य तो ध्येयरूप है। केवलज्ञान उपेय है और साधकभाव उपाय है। उपायका साध्य उपेय केवलज्ञान है।

प्रश्न :–जिनवरकथित व्यवहारचारित्रका सावधानीपूर्वक पालन सम्यग्दर्शन होनेका कारण होता है या नहीं?

उत्तर :–रंचमात्र भी कारण नहीं होता। सम्यग्दर्शन होनेका कारण तो अपना त्रिकाली आत्मा ही है। जिनेन्द्र कथित व्यवहारचारित्रको सावधानीपूर्वक और परिपूर्ण पाले, तथापि उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता।

प्रश्न :–दोनों अपेक्षाओंका प्रमाणज्ञान करे, फिर पर्यायदृष्टि गौण करे, निश्चयदृष्टि मुख्य करें—इतनी महेनत करनेके बदले 'आत्मा चैतन्य है'—मात्र इतना ही अनुभवमें आए तो इतनी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है या नहीं?

उत्तर :–नहीं; नास्तिकमतके सिवाय सभी मतवाले आत्माको चैतन्यमात्र मानते हैं। यदि इतनी ही श्रद्धाको सम्यग्दर्शन कहा जाय तो सबको सम्यक्त्व सिद्ध हो जाएगा। सर्वज्ञ वीतरागने आत्माका जैसा स्वतंत्र और पूर्ण स्वरूप कहा है—वैसा सत्समागमसे जानकर, स्वभावसे निर्णय करके, उसका ही श्रद्धान करनेसे निश्चय सम्यक्त्व होता है। सर्वज्ञको स्वीकार करनेवाले जीवने यह निर्णय किया है कि अल्पज्ञ जीव अधूरी अवस्थाके कालमें भी सर्वज्ञ परमात्मा जैसा पूर्ण सामर्थ्यवान है। पूर्णको स्वीकार करनेवाला प्रतिसमय पूर्ण होनेकी ताकात रखता है। परोक्षज्ञानमें वस्तुके वर्तमान स्वतंत्र त्रिकाली अखण्ड परिपूर्ण स्वरूपका निर्णय पूर्णताके लक्ष्यसे ही होता है। शुद्धनयसे ऐसा जानना निश्चय सम्यक्त्व है।

हे मुनि! तुम मत स्याद्वाद अनघ, दृष्टेष्ट विरोध विना स्यात् वद;
तुमसे प्रतिपक्षी बाध सहित, नहिं स्याद्वाद हैं दोष सहित।१३८।

प्रश्न :–जिस प्रकार क्रियानयसे साध्य सिद्धि है ऐसा एक धर्म है और ज्ञाननयसे साध्य सिद्धि है ऐसा भी एक धर्म है, उसी प्रकार त्रिकाली द्रव्यके आश्रयसे सम्यग्दर्शन हो और निर्मल पर्यायसहित द्रव्यके आश्रयसे भी सम्यग्दर्शन हो—ऐसा है क्या ?

उत्तर :–नहीं, एक ही समयमें जाननेयोग्य क्रियानय तथा ज्ञाननय इत्यादि अनन्तधर्म है, परन्तु सम्यग्दर्शनका विषय एक ही नयसे त्रिकालीद्रव्य भी है और दूसरे नयसे देखने पर पर्याययुक्त द्रव्य भी सम्यग्दर्शनका विषय बने ऐसा कोई धर्म ही नहीं है। सम्यग्दर्शनका विषय तो मात्र भूतार्थ ऐसा त्रिकाली ध्रुव (पर्यायरहित) ही है। उसीके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होता है, अन्यथा सम्यग्दर्शन नहीं होता।

प्रश्न :–सम्यग्दर्शन तो राग छोड़ने पर होता है न ?

उत्तर :–रागकी रुचि छोड़कर स्वभावकी रुचि करनेसे सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन होने पर रागसे भिन्नता भासित होती है, राग सर्वथा नहीं छूटता, पर रागको दुःखरूप जानकर उसकी रुचि छूटती है।

प्रश्न :–गुण-भेदके विचारसे भी मिथ्यात्व न टले तो मिथ्यात्व कैसे टलेगा ?

उत्तर :–जिसमें राग और मिथ्यात्व है ही नहीं—उस शुद्धवस्तुमें परिणाम तन्मय होने पर मिथ्यात्व टल जाता है, दूसरा कोई उपाय मिथ्यात्व दूर करनेका नहीं है। भाई ! गुण-भेदका विकल्प भी शुद्धवस्तुमें नहीं है; शुद्धवस्तुकी प्रतीति गुण-भेदके विकल्पकी अपेक्षा भी नहीं रखती। वस्तुमें विकल्प नहीं और विकल्पमें वस्तु नहीं। इसप्रकार दोनोंकी भिन्नता जानकर परिणति विकल्पसे हटकर स्वभावमें आवे तब मिथ्यात्वका अभाव हो जाता है—यही मिथ्यात्व टालनेकी रीति है, अर्थात् उपयोग और रागादिकका भेद-ज्ञान होना ही सम्यक्त्वका मार्ग है। इसलिए विकल्पकी अपेक्षा चिदानन्द स्वभावकी अनन्त महिमा भासित होकर उसका अनन्त गुण रस आना चाहिये।

प्रश्न :–जिसको सम्यग्दर्शन होना ही है, ऐसे जीवकी पूर्व भूमिका कैसी होती है ?

उत्तर :–इस जीवको जैसा वस्तुका स्वरूप है, वैसा सविकल्प निर्णय होता है, लेकिन सविकल्पसे निर्विकल्पता होती ही है, ऐसा नहीं है।

हे जिन! सुर असुर तुम्हें पूजें, मिथ्यात्वी चित नहिं तुम पूजें;
तुम लोकत्रय हितके कर्ता, शुचि ज्ञानमई शिव-घर धर्ता।१३९।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *वहाँ तो प्रथम आत्माको जाननेके लिये कहा है, तो क्या आत्माकी श्रद्धा बादमें करनी ?*

समाधान :—जब स्वयं अपनी ओर जाये तब पहले यथार्थ ज्ञानसे पहिचाने। इसलिये प्रथम यथार्थ ज्ञान करना, फिर प्रतीति और उसके बाद आचरण करना—ऐसा क्रम लिया है। अनादिसे अपनेको सच्ची समझ ही नहीं हुई, इसलिये प्रथम ऐसा कहा जाता है कि—तू ज्ञान यथार्थ कर तो श्रद्धा यथार्थ हो। वास्तवमें तो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र वह मोक्षमार्ग है। यथार्थ प्रतीति हो तभी मोक्षमार्गका प्रारम्भ होता है। परन्तु पहले यथार्थ ज्ञान करे तो फिर श्रद्धा हो—ऐसा कहा है।

प्रश्न :— *पहले क्या होता है—श्रद्धा या ज्ञान ?*

समाधान :—सच्ची समझके बिना यथार्थ श्रद्धा नहीं होती और यथार्थ श्रद्धाके बिना ज्ञान यथार्थ नहीं होता।

प्रश्न :— *तब फिर हमें ज्ञान और श्रद्धा दोनों करने होंगे ?*

समाधान :—ज्ञान और श्रद्धा साथ ही हैं। श्रद्धा यथार्थ हो तो ज्ञान यथार्थ हुए बिना नहीं रहता। जिसे यथार्थ ज्ञान हो उसको श्रद्धा भी यथार्थ होती है।

प्रश्न :— *जैनदर्शनमें श्रद्धाकी प्रधानता है ?*

समाधान :—हाँ, श्रद्धाकी प्रधानता है। श्रद्धा करे उसमें ज्ञान बीचमें आता है, इसलिये प्रथम ज्ञान करना ऐसा कहा जाता है, परन्तु श्रद्धा यथार्थ हो तभी मुक्तिके मार्गकी शुरुआत होती है।

प्रश्न :— *क्या मुमुक्षुको आत्मप्राप्ति करनेमें देव–शास्त्र–गुरुके प्रति शुभभाव आता ही है ?*

समाधान :—हाँ, मुमुक्षुकी भूमिकामें वैसे भाव आते हैं। सम्यग्दर्शन होनेपर मुक्तिमार्गका प्रारम्भ होता है; पश्चात् चारित्रदशा हो तब भी देव–शास्त्र–गुरुके शुभ विकल्प

हे प्रभु! गुणभूषण सार धरें, श्री सहित सभा जन हर्ष करे;
तुम वपु कांति अति अनुपम है, जगप्रिय शशि जीते रुचितम है।१४०।

साथ होते हैं। जब तक वीतरागदशा नहीं हुई है तबतक शुभभाव होते हैं। मुमुक्षुको तो ऐसा लगता है कि देव–शास्त्र–गुरुकी समीपता हो, उनकी वाणीका श्रवण–मनन हो—आदि भावनायें आती हैं। सम्यग्दृष्टिको, चारित्रवान् मुनिको भी देव–शास्त्र–गुरुकी सान्निध्यताके शुभभाव आये बिना नहीं रहते, बीचमें साथ होते हैं। अणुव्रत–महाव्रतके शुभपरिणाम आते हैं उसके साथ देव–शास्त्र–गुरुके सान्निध्यके शुभपरिणाम भी आते हैं। बाह्य योग कितना होता है वह बात अलग है, परन्तु उसकी भावना तो ऐसी होती है।

प्रश्न :— *पात्र शिष्यको सम्यग्दर्शन प्राप्त करने हेतु कैसा चिंतन–मनन करना चाहिये कि जिससे उसे शीघ्र प्रयोजनकी सिद्धि हो ?*

समाधान :—उसके निरन्तर ज्ञायकका चिन्तवन होना चाहिये। मुझे तो ज्ञायक ही चाहिये, अन्य कुछ नहीं। सर्व शुभाशुभ विभावभाव हैं उनमें कहीं शान्तिका अनुभव नहीं होता। मेरा ज्ञायकभाव ही सुखरूप एवं आनन्दरूप है। इसप्रकार ज्ञायकका चिन्तन–मनन हो और उस हेतु बारम्बार उसीका अभ्यास, उसी प्रकारके श्रुतका चिन्तवन करता रहे। द्रव्य–गुण–पर्याय क्या हैं ? निमित्त–उपादान क्या हैं ? ऐसे प्रयोजनभूत तत्त्वोंका विचार अनेक प्रकारसे करता रहे। मैं ज्ञायक हूँ; परपदार्थोंका मैं कर्त्ता नहीं हूँ; प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है।—ऐसा सर्व चिन्तन ज्ञायककी सिद्धि हेतु करे।

मेरा ज्ञायक ज्ञायकरूपसे कैसे परिणमित हो जाय ऐसी भावना निरन्तर वर्तती है। बारम्बार उसीका चिन्तन–मनन होता है। प्रतिक्षण ज्ञायकका चिन्तन–मनन रहे ऐसा उसका प्रयत्न होता है, उसमें उसे थकान नहीं लगती; प्रयत्न चालू ही रखता है।

प्रश्न :— *हम ज्ञानसे पृथक् करते थे ऐसी हमारी भूल होती थी; तो क्या ज्ञायकको ज्ञानसे भिन्न नहीं मानना ?*

समाधान :—मैं अपूर्ण ज्ञान जितना नहीं हूँ, पूर्ण शाश्वत हूँ। मति–श्रुत–अवधि–मनःपर्ययज्ञान वे सब क्षयोपशम ज्ञानके भेद हैं, वह मेरा पूर्ण स्वभाव नहीं है। पूर्ण स्वभावको ग्रहण करना है, अपूर्णको नहीं। राग और निमित्तके कारण जो पर्यायें होती हैं उन्हें ग्रहण न करके जो पूर्ण स्वरूप है उसे ग्रहण करना चाहिये। यह सब अपूर्ण पर्यायें हैं उनका ज्ञान करना है। वे चैतन्यकी साधनामें प्रकट होनेवाली पर्यायें हैं, उनसे भेदज्ञान नहीं करना है।

हे जिन! मायामद नाहिं धरो, तुम तत्त्व-ज्ञानसे श्रेय करो;
मोक्षेच्छु कामकर वच तेरा, व्रत-दमकर सुखकर मत तेरा।१४१।

बाल विभाग

कपिल ब्राह्मणकी कथा

वनवासके समय वन-अटवी भ्रमण करते हुए देव समान राम-लक्ष्मण मनोहर नंदनवन जैसे वनमें सुखपूर्वक भ्रमण करते हुए एक मनोज्ञ देशमें आ पहुँचे। जिसके मध्यमें तापी नदी बह रही थी। कई जातिके पक्षीओंके मधुर स्वर सुनाई दे रहे थे। ऐसे निर्जन वनमें सीताको प्यास लगी। उसने पतिसे कहा कि हे नाथ! प्याससे कारण मेरा कंठ सूख रहा है। जैसे अनंतभवके भ्रमणसे खेदखिन्न होता हुआ भव्य जीव सम्यग्दर्शनकी इच्छा करे वैसे प्याससे व्याकुल मैं शीतल जल चाहती हूँ। ऐसा कहकर वे एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। तब रामने कहा, हे देवी! हे शुभ्रे! तू विषाद मत कर। पासमें ही एक गाँव है वहाँ सुन्दर मकान है। इसलिये ऊठ जा और थोड़ा आगे चल। इस गाँवमें तुझे शीतल जल मिलेगा। पश्चात् सीताजी खड़े होकर चलने लगते है। धीरे धीरे चलते हुए दोनों भाई अरुण नामके गाँवमें आये। वहाँ पर धनवान किसान रहते थे।

वहाँ एक कपिल नामके प्रसिद्ध अग्निहोत्री ब्राह्मणके घर पर ठहरे। वह अग्निहोत्रीके घर पर थोडी देर थकान मिटायी। कपिलकी स्त्रीने पानी लाकर दिया उसे सीताने पीया। ब्राह्मण वनमेंसे बिल, शमशाद आदि वृक्षोंकी लकड़ीकी गठरी बांधकर लाया था। जो दावानल समान प्रज्वलित मनवाला, महाक्रोधी, कालकूट विष समान वचन बोलनेवाला, उल्लू समान जिसका मुख था, हाथमें कमंडल, चोटीकी गांठ बंधी हुई, लम्बी दाढी, जनोई पहिना हुआ वह खेतमेंसे अनाज काट लेनेके पश्चात् गिरे हुए दानोंको चुनकर लाता था और आजीविका चलाता था। उसने इनको घरमें बैठे देखकर मुख वक्र करके ब्राह्मणीको अपशब्द कहने लगा कि पापणी! तूने इन लोगोंको घरमें आने क्यों दिया? आज तुझे मैं गौशालामें बांधूँगा। देख! यह निर्लज्ज धीढ़ पुरुषने धूलसे मेरा अग्निहोत्रीका स्थान मलिन किया है।

ऐसे वचन सुनकर सीता रामसे कहने लगी कि : हे प्रभो! इस क्रोधीके घरमें नहीं ठहरना है। वनमें चलिये, वहाँ विविध प्रकारके फल-फूलोंसे झुके हुए वृक्ष शोभते है। निर्मल जलके सरोवरमें कमल खिले हुए हैं, मृग अपनी इच्छानुसार क्रिड़ाएँ कर रहे है। वहाँ ऐसे दुष्ट पुरुषके कठोर वचन सुननेको मिलते नहीं है। वैसे तो यह देश धनसे पूर्ण है और स्वर्ग जैसा सुंदर है, लेकिन यहाँके लोग अत्यंत कठोर है और ग्राम्यजन विशेष कठोर है।

विप्रके रुक्ष वचनों सुनकर गाँवके सभी लोग आये, यह दोनों भाईओंका देव समान रूप देखकर मोहित हुए। ब्राह्मणको एकांतमें ले जाकर समझाने लगे कि एक रात ही ठहरेंगे, तेरा क्या

हे प्रभु! तव गमन महान हुआ, शममत रक्षक भय हान हुआ;
जिनवर हस्ती मद स्रवन करे, गिरि तटको खंडत गमन करै।१४२।

चला जायेगा। ये गुणवान, विनयवान, रूपवान पुरुषोत्तम हैं। तब ब्राह्मणने उनके साथ झगडा किया और सभीको कहा कि आप मेरे घर पर क्यों आये हो, दूर चले जाओ। पश्चात् यह मूर्खने राम-लक्ष्मण-सीता पर क्रोध करके कहा, कि हे अपवित्र! मेरे घरसे बाहर निकल जाओ। ब्राह्मणके कुवचन सुनकर लक्ष्मण क्रोधित हुए, उस दुष्टके पैर ऊँचे करके और सिर नीचे करके घुमाकर पृथ्वी पर पटकने जा रहे थे वहाँ परमदयालु श्रीरामने उसे रोका : हे भाई! यह क्या? ऐसे दीनको मारनेसे क्या लाभ? इसे छोड़ दो, इसको मारनेसे हमारी अपकीर्ति होगी। जिनशासनमें कहा है कि शूरवीरोंको यति, ब्राह्मण, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध ये दोषित हो तो भी वधके योग्य नहीं है। इस प्रकार रामने भाईको समझाया और ब्राह्मणको छुड़वाया।

स्वयं लक्ष्मणको आगे करके सीता सहित कुटियामेंसे बाहर निकल गये। स्वयं जानकीको कहने लगे कि : हे प्रिये! धिक्कार है नीच जनोंकी संगतिको, कि जिससे मनमें विकारका कारण और महापुरुषोंको त्याज्य ऐसे क्रूर वचन सुनने पड़ते है! महाविषम वनमें वृक्षोंकी नीचे रहना भला है और आहारादि बिना प्राण जाए तो भी भला है, परन्तु दुर्जनके घर पर एक क्षणके लिये भी ठहरना योग्य नहीं है। नदीके किनारे, पर्वतोंकी गुफामें रहेंगे लेकिन ऐसे दुष्टके घर नहीं आयेंगे। इस प्रकार दुष्टके संगकी निंदा करते हुए गाँवमेंसे निकलकर राम वनमें गये।

उस समय वर्षाऋतु आई। समस्त आकाशको श्याम करते अपनी गर्जनासे पर्वतोंकी गुफामें प्रतिध्वनि करती, ग्रह-नक्षत्र-ताराके समूहको आच्छादित करती बीजलीके चमकारसे मानों कि आकाशको हसाने मेघपटल ग्रीष्मका ताप दूर करके मुसाफिरोंको बीजलीरूपी ऊंगलीसे डरते हुए गर्जना कर रहे थे। श्याम मेघ आकाशमें अंधकार करते हुए जलकी धारासे मानों कि स्नान कराते हो जैसे गज लक्ष्मीको स्नान कराते हैं। वे दोनों वीर वनमें एक बड़े बरगदकी (बखोल) गुफा समान खाली जगहके पास आये, जो घर समान लग रही थी।

एक दंभकर्ण नामका यक्ष उस बरगदमें रहता था। इनका तेज देखकर उसने अपने स्वामीको नमस्कार करके कहा : हे नाथ! कोई स्वर्गमेंसे आया है, मेरे स्थानमें बैठे है जिन्होंने अपने तेजसे मुझे अपने स्थानसे दूर किया है, मैं वहाँ जा नहीं सकता। यक्षके वचन सुनकर यक्षाधिपति अपने देवके साथ राम-लक्ष्मण जहाँ बैठे थे उस वृक्षके पास आया। वह वैभवसंयुक्त वनक्रीडामें आसक्त था। उसका नाम नूतन था। उसने दूसरे ही रूपवान दोनों भाईयोंको देखकर अवधिज्ञानसे जान लिया कि यह बलभद्र और नारायण है। उनके प्रभावसे उसे अत्यंत वात्सल्य हुआ और राम-लक्ष्मण-सीता सो रहे थे वहाँ क्षणमात्रमें उसने एक मनोज्ञ नगरीका निर्माण किया। (क्रमशः)✻

परमत मृदुवचन-रचित भी है, निज गुण संप्रापित रहित वह है;
तव मत नय-भंग विभूषित है, सुसमन्तभद्र निर्दूषित है।१४३।

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

नीचे दिये गये विकल्पमेंसे प्रश्नका सही उत्तर कौंसमें लिखे।

(१) भावनिर्ग्रंथपना कौनसे गुणस्थानसे प्रारंभ होता है?
(अ) चौथा (ब) पांचवाँ (क) छठवाँ (.....)

(२) नय किसे नहीं होते हैं?
(अ) मिथ्यादृष्टिको (ब) केवलीको (क) दोनोंको (.....)

(३) नय कब प्रारंभ होते हैं?
(अ) सम्यग्दर्शन पूर्व (ब) सम्यग्दर्शन बाद (क) छठवें गुणस्थानमें (.....)

(४) सम्यग्दृष्टिको सिद्ध भगवान जितना सुख है कि सिद्ध भगवान जैसा सुख है?
(अ) जितना (ब) जैसा (क) दोनों (.....)

(५) सर्वप्रथम कौनसा राग छूटता है?
(अ) बुद्धिपूर्वकका (ब) अबुद्धिपूर्वकका (क) दोनों (.....)

(६) दर्शनमोहनीयकर्मकी अधिकसे अधिक स्थिति कितनी?
(अ) ७० सागर (ब) ७० करोड सागर (क) ७० क्रोडाक्रोडी सागर (.....)

(७) सिद्ध भगवानको स्वभाव अर्थ पर्याय और विभाव व्यंजन पर्याय होती है?
(अ) हाँ (ब) नहीं (.....)

(८) सभी सिद्ध भगवानको अर्थ पर्याय समान होती है?
(अ) हाँ (ब) नहीं (.....)

(९) विदेहक्षेत्रमें तीर्थंकर कब होते हैं?
(अ) तीनों काल (ब) चौथे कालमें (क) पंचमकालमें (.....)

(१०) अज्ञानी उपभोगको भोगता है?
(अ) हाँ (ब) नहीं (.....)

(११) राग ज्ञानीको होता है या अज्ञानीको?
(अ) ज्ञानीको (ब) अज्ञानीको (क) दोनोंको (.....)

(१२) सकल संयम किसको होता है?
(अ) चौथे गुणस्थानमें (ब) पाँचवें गुणस्थानमें (क) मुनिको (.....)

(१३) द्रव्यके थोड़े भागमें हो लेकिन स्थायी हो ऐसा क्या है?
(अ) गुण (ब) पर्याय (क) ऐसा होता ही नहीं (.....)

(१४) अलोकाकाशमें कितने द्रव्य होते हैं?

(अ) एक (ब) छह (क) शून्य (.....)

(१५) जगतमें प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्रता किस गुणके कारणसे हैं?

(अ) अगुरुलघुत्व गुण (ब) अस्तित्व गुण (क) वस्तुत्व गुण (.....)

(१६) मलिनता किसमें होती है?

(अ) स्वभावमें (ब) शक्तिमें (क) पर्यायमें (.....)

(१७) एक जीवको कमसे कम और अधिकसे अधिक कितने शरीर होते हैं?

(अ) २ और ४ (ब) ३ और ४ (क) २ और ३ (.....)

(१८) मनुष्यगतिमें कितने जीव होते हैं?

(अ) संख्यात (ब) अनंत (क) असंख्यात (.....)

(१९) थैलीमें रूपये हैं ऐसे द्रव्यमें गुण है?

(अ) हाँ (ब) ना (.....)

(२०) शरीर कितने प्रकारके होते हैं?

(अ) चार (ब) पाँच (क) तीन (.....)

प्रौढके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) ४ थे (अ)
(२) दोनोंको (क)
(३) सम्यग्दर्शन बाद (ब)
(४) जैसा (ब)
(५) बुद्धिपूर्वकका (अ)
(६) ७० क्रोडाक्रोडी सागर (क)
(७) नहीं (ब)
(८) हा (अ)
(९) तीनोंकाल (अ)
(१०) नहीं (ब)
(११) दोनोंको (क)
(१२) मुनिको (क)
(१३) ऐसा होता ही नहीं (क)
(१४) एक (अ)
(१५) अगुरुलघुत्व (अ)
(१६) पर्यायमें (क)
(१७) २ और ४ (अ)
(१८) असंख्यात (क)
(१९) ना (ब)
(२०) पाँच (ब)

(पृष्ठ १९ का शेष भाग) (अनुभव प्रकाश)

सत्य भासित हुआ अर्थात् आत्मस्वभाव प्रकाशित हुआ। आत्माने स्वयं अपनेसे पहिचान कर ली तब चेतनभावकी प्रतीति हुई और शुद्ध भावना की—निजभावना की—शिवपदका अनुसरण करके आनन्दरससे परिपूर्ण होकर भवबाधाका विनाश करके आत्मानन्द प्रकट किया—उसका नाम समाधि है। (क्रमशः)*

सात भाव व्यसनोंका स्वरूप

व्यसन अर्थात् बूरी आदत। व्यसन पापका मूल है। व्यसन दुःखदायक है। दुःखोंका घर है। व्यसन कुगतिमें ले जाता है। व्यसन आत्मज्ञानको रोकनेवाला है।

(१) द्रव्य व्यसन : जो दुराचारी भावमें शरीर निमित्त हो वह द्रव्य व्यसन। जैसे शराब पीना, शिकार करना, जुआ खेलना आदि।

(२) भाव व्यसन : जूठे मोह परिणामकी अंतरंग कल्पना अर्थात् भाव व्यसन। इस भावव्यसनमें क्रिया चाहे न हो लेकिन परिणामका फल तो पाप ही है। भाव व्यसन सात प्रकारका हैं।

(१) भाव जुआ : अशुभकर्मके उदयमें हार और शुभकर्मके उदयमें विजय मानना वह भाव जुआ।

(२) भाव मांसभक्षण : शरीरके विषयोंमें लीन हो जाना वह भाव मांस भक्षण।

(३) भाव मद्यपान : मिथ्यात्वसे मूर्छित होकर स्वरूपको भूल जाना वह भाव मद्यपान।

(४) भाव वेश्यागमन : कुबुद्धिके रास्ते चलना वह भाव वेश्यागमन।

(५) भाव शिकार : कठोर परिणामसे किसी भी प्राणीका घात या दुःखी करनेका भाव वह भावशिकार।

(६) भाव परस्त्रीसंग : देहादि परवस्तुमें मोह करना वह भावपरस्त्रीसंग।

(७) भावचोरी : अतिशय मोहसे परपदार्थोंको अपना मानकर ग्रहण करनेका भाव वह भाव चोरी।

(नाटक समयसार, साध्य-साधकद्वार, गाथा २९के अर्थमेंसे)

चक्रवर्तीका वैभव

चक्रवर्तीके पास चौदह रत्न होते है उसमें सात सजीव रत्न और सात निर्जिव रत्न होते हैं।

सजीव रत्न (सात) : १. स्त्री रत्न – पटरानी, २. हस्ती रत्न – एक विशेष हाथी, ३. अश्व रत्न – एक विशेष घोडा, ४. सेनापति, रत्न – सेनापति जो युद्धमें नेतृत्व करता है, ५. गृहपति रत्न – गृह व्यवस्था आदि कार्य, ६. पुरोहित रत्न – धर्म-कर्म और मार्गदर्शन करनेवाला पुरोहित, ७. स्थपति रत्न – भवन और महल बनानेवाला शिल्पी

अजीव रत्न (सात) : १. चक्र रत्न – शत्रुओंका संहारके लिये एक दिव्य चक्र, २. छत्र रत्न – सेनाकी धूप, वर्षा और ओलोंसे रक्षा करनावाला, ३. असि रत्न – एक शक्तिशाली तलवार ४. दण्ड रत्न – भूमिको समतल और गुफाके द्वार खोलनेके काम आता है, ५. काकिणी रत्न – अंधकारको दूर करनेके लिये चंद्रमा अथवा सूर्यकी तरह प्रकाश फैलाता है, ६. मणि रत्न – इच्छित पदार्थोंको प्रदान करनेवाला एक किमती रत्न, ७. चर्म रत्न – सेनाको नदी आदि पार करानेवाला और उपद्रवोंसे बचानेवाला ।

इसके अतिरिक्त नव निधि, ९६००० रानियाँ, हजारो पुत्र-पुत्रीयाँ, एक क्रोडाक्रोडी हल, ३ करोड गाय, १८ करोड घोडा, ४८ करोड पायदल, ८४ करोड सुभडवीर, ८४ लाख हाथी, ८४ लाख रथ, छह खंडका राज्य, ९६ करोड गाँव, ७५ हजार शहर, ७६ हजार खेट-उपनगर, ३२ हजार मुकुटबद्ध राजा, १ करोड सुवर्णके थाल, ४ हजार मंडम्ब, ४८ हजार पट्टण, ९९ हजार द्रोण, ७४ हजार संवाहन, २८ हजार दुर्ग

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-१५ से ६-३५ : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१८वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-०० से ४-००: श्री समयसार कलशटीका पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ७-४५ से ८-४५ : श्री परमात्मप्रकाश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

❀ भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य 'आचार्यपदवी दिन' ❀

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य 'आचार्यपदवी दिन' पोष कृष्णा ८ ता. १२-१२-२०२५ गुरुवारको भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवके विशेष पूजन-भक्तिके कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

❀ श्री जम्बूद्वीप-बाहुबली जिनायतन त्रिदिवसीय महोत्सव ❀

सुवर्णपुरीके श्री जम्बूद्वीप-बाहुबली जिनायतनका तृतीय वार्षिकोत्सव पोष सुद-१२, ता. १-१-२०२६, गुरुवार से पोष सुद-१५ ता. ३-१-२०२६, शनिवार तक त्रिदिवसीय पूजन-भक्ति-शिक्षणवर्ग आदि कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

*** विवेकी पुरुष अपनी बुद्धि के अनुसार जिसमें अपना हित समझे सो थोड़े या बहुत उपदेश को ग्रहण करे, परन्तु मुझे यह कार्यकारी है, यह कार्यकारी नहीं है—इतना तो ज्ञान अवश्य होना चाहिए। सो कार्य तो इतना है कि यथार्थ श्रद्धान–ज्ञान करके रागादि घटाना। सो यह कार्य अपना सिद्ध हो उसी उपदेश का प्रयोजन ग्रहण करे, विशेष ज्ञान न हो तो प्रयोजन का तो नहीं भूले, इतनी तो सावधानी अवश्य होना चाहिये। जिसमें अपने हित की हानि हो, उस प्रकार उपदेश का अर्थ समझना योग्य नही है। इस प्रकार स्याद्वादद्रृष्टि सहित जैन–शास्त्रों का अभ्यास करने से अपना कल्याण होता है।**

(श्री टोडरमल्लजी, मोक्षमार्ग प्रकाशक, अधि.–८, पृष्ठ–३०३)

आत्मधर्म सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना

आप सभी हमारे मुमुक्षु हैं। हिन्दी आत्मधर्म आपको बहुत समयसे भेज रहे है। अब ट्रस्टने निर्णय लिया है कि जो ग्राहक १५ वर्षसे अधिक समयसे है उनको अब आगामी अंक भेजना बंद किया जायेगा। यदि जिन्हें आत्मधर्म मासिक पुनः चालु करवाना चाहते हो तो वे आत्मधर्म कार्यालयको एक संमतिपत्र भेजे जिससे आपको पुनः ५ वर्षके लिये अंक रीन्यु किया जायेगा। इसलिये आप अपना उचित उत्तर (संमति पत्र) भेजे उसके अनुसार आपको अंक भेजा जायेगा।

इसके अलावा यदि आप फीझीकल कोपी नहीं चाहते हो और **email** अथवा **whatsapp** पर **PDF** चाहते हो तो उस अनुसार आपको भेजनेमें आयेगा।

आप अपना संमतिपत्र : आत्मधर्म कार्यालय अथवा मेल अथवा वोटसेप पर भेज सकते है।

आत्मधर्म कार्यालय,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (जि. भावनगर)

email contact@kanjiswami.org
Whatsapp No 9276867578

सम्मति पत्र

प्रति श्री आत्मधर्म कार्यालय

मैं .....

सूचित करता हूं कि आपके द्वारा भेजे जानेवाला आत्मधर्म अंकका हम नियमित पठन एवं स्वाध्याय करते है। तथा किसी भी प्रकारका अविनय अशातना हमारे द्वारा नहीं हो रही है। इसलिये हमारा आत्मधर्म अंक रीन्यु करनेकी विनती करते है।

आत्मधर्म फिझीकल /**email** / **whatsapp.....** ..... द्वारा हमें भेज देंगे।

ग्राहक नंबर : .....

नाम : .....

पता : .....

.....

.....

संपर्क नंबर : .....

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

• जो सर्वज्ञके शास्त्रसे विरूद्ध प्ररूपणा करते हों तथा जिनकी तत्त्व-विपरीत दृष्टि है – वे कुगुरु हैं। यह बात कुगुरु सिद्ध करने हेतु नहि, वरन् अपना ज्ञान यथार्थ होने हेतु है; ताकि मिथ्याज्ञान छूट कर, सत्यका स्वीकार हो।७२२।

• धर्मी जीव, वाणी-योग व पुण्य-उदय होने पर, वाद-विवाद कर असत्यका उत्थापन तथा सत् का स्थापन करता है; परन्तु ऐसे उदयके अभावमें ज्ञानीको अन्तरमें असत्यकी अस्वीकृति-निषेध व विरोध वर्तता है – ऐसी स्थितिमें शान्ति बनाए रखनेवाले मिथ्या- मध्यस्थभाव रखनेवाले मिथ्यादृष्टि हैं – ऐसेमें सम्यग्दृष्टि शान्त होकर नहीं बैठ सकते। यदि अपनी माता-पर लाँछन आए तो कया पुत्र शांतिसे सहन-करता रह सकता है? तत्त्वसे विरुद्ध कथन आए तो उसे धर्मी सहन नहीं कर सकता।७२३।

• किसका समागम करनेसे सम्यक-श्रद्धान आदि हों - आत्मवृद्धि हो; व किसकी संगतिसे मिथ्यात्व पुष्ट होगा, चार-गतिका भ्रमण यों का यों बना रहेगा तथा दुर्गतिका कारण होगा? इन दोनोंकी गम्भीर परीक्षा कर, निर्णय करना योग्य है।७२४।

• जो आत्म-शांति व सुख चाहते हों उन्हें आत्मामे सुखकी सत्ता – अस्तित्वका स्वीकार होना चाहिए तथा वैसे सुखको कौन प्राप्त हुआ है, उसका भी निर्णय करना चाहिए। यह मोक्षमार्गमें प्रयोजनभूत अपेक्षा है।७२५।

• प्रश्न : हम अन्य देवादिकी भक्ति आदि नहीं करते तो हमारा ग्रहीत-मिथ्यात्व तो छुटा है न? इतना तो लाभ हुआ न?

उत्तर : नहीं; ऐसा नहीं है, क्योंकि तुम्हें ग्रहीतमिथ्यात्वका ज्ञान ही नहीं है। तुम्हें १८ दोष-रहित सच्चे-सर्वज्ञदेव, उनकी अनेकान्त लक्षणयुकत हितकारी-वाणी तथा सच्चे निर्ग्रन्थ-गुरुकी पहचान ही नहीं है। किसी समाज-प्रतिष्ठित पुरुषके अनुसरण, अथवा कुल-परम्परासे तुम सच्चे-देवादिको मानते हो; परन्तु तुम्हें अन्तरंगमें उनका स्वरूप भासित नहीं हुआ, अतः तुम्हारे ग्रहीतमिथ्यात्व छुटा हुआ नहीं कहा जा सकता।

वास्तवमें तो कुदेवादिसे सम्बन्ध तोड़कर जो सच्चे-देवादिमें लगनी लगाकर, तत्त्वका निर्णय कर, अन्तरंग शुद्ध-तत्त्वका श्रद्धान आदि करेंगे उनका ही कल्याण होगा।७२६।

३६
आत्मधर्म
दिसम्बर २०२५
अंक४, वर्ष २०

Posted at Songadh PO
Publish on 5-12-2025
Posted on 5-12-2025

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org